आदर्श चरितम्

ॐ अर्हम् नमः

आदर्श चरितम्

संग्राहक—

पंडित मुनि श्री सुखलालजी महाराज

लेखक—

कवि गुलाबशङ्कर गौरा,

काव्यपञ्चानन, काव्यचूडामणि, काव्यतीर्थ

रतलाम।

संशोधक एवं परिवर्धक—

पं० नाथूराम जैन शास्त्री,

साहित्याचार्य, साहित्य चक्रवर्ती

देहली।

प्रकाशक—

श्री महावीर जैन सभा,

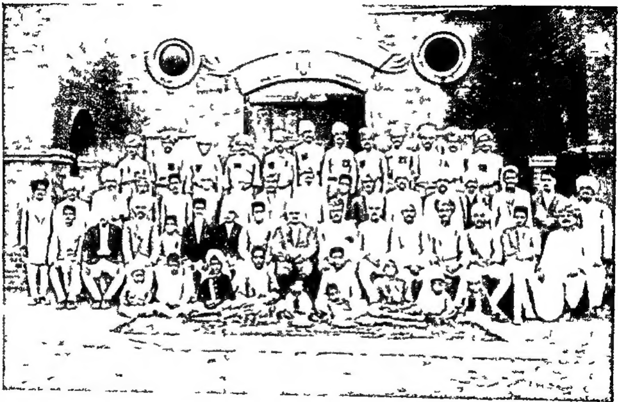
जम्मू तवी (पंजाब)

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य एक रुपया | वीराब्द २४६६ विक्रमाब्द १९९६

त्रिलोकचन्द जैन'
मंत्री 'श्री महावीर जैन सभा"
जम्मू (पंजाब)

नोट—इस पुस्तक में जल्दी के कारण संशोधन में कुछ गलतियां रही हों तो पाठकगण सुधार कर पढ़ लेवें।

मुद्रक—
गयादत्त शर्मा,
मैनेजर "गयादत्त प्रेस"
बाग दिवार, देहली



श्री महावीर जैन सभा जम्मू (पंजाब) के सदस्य गण

निवेदन

हमारे असीम पुण्योदय से इस वर्ष (सवत् १९९५ वि० मे) प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य धैर्यवान् शान्तमूर्ति अनेक शुभ गुणालकृत पूज्यवर श्री १००८ श्रीरत्नचन्द्र जी महाराज की अपार कृपासे जम्मू मे प्रिय व्याख्यानी पडित मुनि श्री १००८ श्री हीरालाल जी महाराज, तपस्वी मुनि श्री १००७ श्री नानकराम जी म० और लघुवयस्क तपस्वी मुनि श्री १००५ श्री दीपचन्द जी महाराज ठा० ३ का चातुर्मास सुख शान्ति और आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ है इन मुनिराजों की असीम कृपा और उपदेश से स्थानीय जैन सघ मे पर्याप्त धार्मिक प्रगति हुई है। तपस्या और धर्म ध्यान भी अच्छा हुआ है। विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि प्रातस्मरणीय स्वर्गीय श्रीमज्जैनाचार्य शास्त्र-विशारद सोम्यमूर्ति अनेक गुणालकृत पूज्यवर श्री १००८ श्री मुन्नालाल जी म० और आदर्श तपस्वी श्री १००८ श्री बालचन्द्र जी म० के उपदेश से स्थापित श्री जीव-दया-फंड जम्मू जो कुछ समय से शिथिल पड गया था वह प्रिय व्याख्यानी प० मुनि श्री हीरालाल जी म० के उपदेश से पुनर्संचालित हो गया है। और उक्त फण्ड को सुचारू रूपसे संचालन करने के लिए उद्देश्य और नियम आदि श्री जैन सभा जम्मू की स्वीकृतिपूर्वक निर्माण किये गये हैं। और मुनिश्री के सद्बोध से जैन बिरादरी (सघ) के प्रत्येक घरमे क्रमश नित्यप्रति आयम्बिल की परिपाटी आरम्भ होगई है। इस प्रकार महाराज

श्री के चातुर्मास होने से हमारे यहाँ नवजीवन का सचार हुआ है।

अतएव इस चातुर्मास की पुण्य-स्मृति मे जैन-सभा जम्मू द्वारा सचालित श्री महावीर जैन-सभा जम्मू की ओर से यह 'आदर्श चरितम्" प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है पाठक महोदय इस पुस्तक को पढ कर लाभान्वित होंगे।

श्री महावीर जैन-सभा स० १९७६ विक्रमीय मे स्थानीय नव युवकों के प्रयत्न से श्री जैन सभा जम्मू की सरक्षा मे स्थापित हुई थी। इस सभा के उद्देश्य—जैन धर्म प्रचार, समाज के नवयुवकों का सगठन और विद्या प्रचार करना थे। उक्त सभा ने सामाजिक और धार्मिक कई काम किये हैं। स्थानीय समाज मे जागृति पैदा करने का श्रेय इसी सभा को है। इसी सभा ने जम्मू मे महावीर जयन्ति-उत्सव सर्व प्रथम मनाना आरम्भ किया था। और श्री जैनसभा से इसी सभा ने अनुरोध करके श्री महावीर जैन रात्रि पाठशाला तथा श्री महावीर जैन लायब्रेरी तथा रीडिंग रूम स्थापित करवाये थे। तथा यही सभा सवत् १९८३ वि० तक जैन सभा जम्मू की आर्थिक सहायता से उपरोक्त सभी सस्थाओं का सचालन भली भाति कर रही थी। किन्तु अब इस सस्था का कार्य शिथिल हो जाने के कारण उपरोक्त सस्थाएँ पुन श्री जैन सभा जम्मू द्वारा सुचारू रूप से चल रही है।

आभार-प्रदर्शन

शास्त्र विशारद प्रवर्तक प० मुनिश्री १००८ श्री हजारीमलजी म०, मनोहर व्याख्यानी प० मुनिश्री १००८ श्री सुख मुनिजी म० और प्रिय व्याख्यानी श्री हीरालालजी म० के हम अतीव आभारी हैं, कि जिनकी असीम कृपा से यह आदर्श चरितम् हमें प्राप्त हुआ है।

प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी महाराज को भी हम हार्दिक धन्यवाद देना कभी नहीं भूल सकते, कि जिनके सद्बोध से प्रेरित होकर हम इस चरित को प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं।

अन्त में हम यह कहे बिना नहीं रहेंगे, कि इस आदर्श चरितम की हिन्दी भाषा के संशोधन तथा प्रूफ रीडिंग में उत्साही युवक श्री० दीपचन्दजी सुराना गंगधार (झालावाड) निवासी ने पर्याप्त परिश्रम किया है। और इसके तिरंगे तथा सादे ब्लाकों की डिजाइन, प्रिंटिङ्ग आदि कार्यों में देहली निवासी उत्साही बन्धु श्री द्वारका प्रसादजी जैन ने काफी दौड़ धूप की है। इसके लिए हम उपरोक्त दोनों महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद समर्पण करते हुए उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं।

श्री संघ के नम्र सेवक

ईश्वरदास ओसवाल — प्रेसिडेण्ट

त्रिलोकचन्द जैन — सेक्रेटरी

श्री महावीर जैन सभा जम्मू

❋ प्रस्तावना ❋

संसार का यह नियम है कि वह जीवन की पवित्रता को धार्मिकता और आचरणहीनता को सांसारिकता समझता है। पाश्चात्य विचारों में तो इसी सिद्धान्त पर विशेष रूप से बल दिया गया है। भारत में राजनीति को धर्म का अंग मान कर उसमें शुभ आचरण की कुछ अनिवार्यता मानी गई है वो यूरोप में उसको धर्म से बिलकुल पृथक् करके उसका धार्मिकता से एक दम सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया है। यूरोपीय राजनीति में प्रतिज्ञा करना, राष्ट्रहित के नाम पर की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ना, निराश्रित नागरिकों पर बम बरसाना एवं सभी प्रकार की आचरणहीनता सभ्य है। भारत में यद्यपि राजनीति धर्म का अंग थी, किन्तु आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य ने राजनीति में कुटिलता का समावेश करके उसको बहुत कुछ आजकल की राजनीति का जामा पहिनाने का यत्न किया था। इसीलिये भारतीय नीतिकारों

ने उनको कौटिल्य नाम दिया था। किन्तु जैन नीतिकारों ने जैन धर्म के धमप्रधान होने के कारण कौटिल्य की इस व्याख्या को कभी स्वीकार नहीं किया और वह बराबर आचरणशुद्धि पर जोर देते रहे।

आज भारतवर्ष ने ससार के सन्मुख अपने उस प्राचीन सिद्धान्त को फिर व्यवहारिक रूप मे उपस्थित किया है। महात्मा गाधी ने धर्म को राजनीति से प्रथक् रखते हुए भी राजनीति मे आचरण शुद्धि को अनिवार्य बतलाया है। जिस समय महात्मा गाधी ने अहिसा द्वारा भारत को स्वतत्र करने का आन्दोलन आरभ किया तो उस समय अनेक राजनीतिज्ञो ने उनकी हसी उडाई, कई एक ने तो उनको निर्बल एव कायर तक कह डाला। किन्तु उन्होंने आलोचको की कोई चिन्ता न करके यह भी घोषणा की कि अहिंसामयी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिये यह आवश्यक एव अनिवार्य है कि वह मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसक बना रहे और सब प्रकार के सासारिक प्रलोभनो से बचता हुआ पूर्णतया सदाचारी हो। आज समार इस बात को जानता है कि महात्मा गाधी पूर्णतया व्यवहारिक एव सफल प्रमाणित हुए, जब कि उनके आलोचक अव्यवहारिक एव असफल प्रमाणित हुए। यद्यपि आजकल काग्रेस आरामतलब एव समयसाधु (मिले हुए अवसर से लाभ उठाने वाले) पुरुषो से भर गई है, किन्तु महात्मा गाधी फिर भी आचरण शुद्धि पर बल देते हुए उसमे से आचरणहीन

व्यक्तियों को निकाल देने की योजना बना रहे हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि आचरण शुद्धि लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा व्यवहारिक सभी प्रकार के जीवन में आवश्यक है। अपने जीवन को पवित्र बनाने का सब से सुगम उपाय है पवित्र जीवन वाले महापुरुषों की जीवन गाथा का अध्ययन करना।

अतएव इसी उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए वर्तमान ग्रन्थ 'आदर्श चरितम्' को पाठको के सन्मुख उपस्थित किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज का जीवन चरित्र है। वैसे तो हिन्दी संस्कृत तथा प्राकृत मे जीवनचरित्रो की इतनी भरमार है कि उनको पढना भी कठिन है, किन्तु पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज के इस जीवन चरित्र मे कुछ ऐसी विशेषता है जो अन्य ससारिक व्यक्तियों के जीवनचरित्र मे नहीं पाई जाती।

पुरुष हृदय स्वभाव से ही पतनशील है। तनिक सा प्रलोभन भी बडे २ धीर वीर पुरुषों के हृदय को चलायमान कर देता है। फिर कचन और कामनी का प्रलोभन तो ससार म सबसे बडा प्रलोभन है। भारतवर्ष के साधुओं और ब्रह्मचारियों की जीवन घटनाओं पर सामूहिकरूप से विचार करने पर पता चलता है कि उनमे से अनेक ऐसे निर्धन थे कि उनका विवाह होना तो दूर, उनको भरपेट अन्न तक नहीं मिलता था, जिससे वह आगे चल करके साधु या ब्रह्मचारी बनगए। अनेक व्यक्ति विवाहित होकर

भी पत्नी मर जाने से ब्रह्मचारी या साधु बन गए। कुछ ऐसे थे जिनका विवाह हो चुका था, किन्तु जो अपनी पत्नी का पेट पालने मे असमर्थ थे, अत वह कमाने धमाने की चिन्ता से छूटने के लिये साधु या ब्रह्मचारी बन गए। अनेक व्यक्ति आजीविका का अवलम्ब होते हुए भी अनुकूल पत्नी न पाने से साधु बन जाते है। अनेक व्यक्ति घर वालो के वाक्यवाणो से बिद्ध होकर घरबार छोड देते है। किन्तु प्रभूत धनधान्य और अनुकूल कामिनी पाकर घर केवल आत्मोन्नति की भावना से घर का परित्याग करने वाले बिरले ही शूर होते हैं। आचार्यश्री तुभचन्द्र जी ऐसे ही वीर आत्मा है। आपके घर मे सासारिक सम्पत्ति की कमी न थी। आपकी सासारिक जीवन की पत्नी अत्यत पतिपरायणा, सुन्दरी, अनुकुल एव आज्ञाकारिणी थी। आपके पिता का भी आपमे अगाध स्नेह था। आपके भाई आदि अन्य कुटम्बी भी आपके सब प्रकार से अनुकूल थे। अतएव इस प्रकार के सुख साधनों के रहते वैराग्य की भावना उत्पन्न होना अलौकिक आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ नही है। इस बात को इतिहास के सामान्य पाठक भी जानते है कि गौतम बुद्ध के ससार के महापुरुषों मे गिने जाने का कारण उनके उपदेश की अपेक्षा उनका त्यागपूर्ण जीवन ही अधिक है, इतिहास लेखक उनके अपनी प्यारी पत्नी यशोधरा तथा अल्पायु पुत्र राहुल को सोते हुए छोड कर चले जाने की घटना का वर्णन अत्यन्त भावुक शब्दों मे किया करते है। साहित्य के विद्वानो ने इस

घटना के आधार पर अनेक नाटकों, काव्यों तथा गद्य ग्रन्थों की रचना करके इस बात के महत्त्व को प्रगट किया है। जैन जाति के लिये यह बात कम सौभाग्य की नहीं है कि उसने भी ऐसे वीर नररत्न को उत्पन्न किया, जिसने बुद्ध के समान अपनी पत्नी को जानबूझ कर छोड़ दिया। बल्कि एक बात में तो आचार्य खूबचन्द्र जी गौतम बुद्ध से भी बढ़ जाते हैं। सम्भवतः गौतम बुद्ध का आत्मा गृहत्याग करते समय बलवान् नहीं था। उनको भय था कि पत्नी के स्नेह सिक्त शब्दों के माधुर्य में उनका गृहत्याग का निश्चय डगमगा न जावे। अतः वह पत्नी से पहले कुछ भी न कह कर चोरों के समान छिप कर भागे और केवल उस समय उसके सामने प्रगट हुए जब उनकी कीर्ति नए धर्म के प्रवर्तक के रूप में भारतवर्ष भर में फैल गई।

आचार्य श्रीखूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र में आरम्भ से ही दृढ़ता दिखलाई देती है। वह साहसपूर्वक अपना विचार अपने कुटुम्बियों को सुना देते हैं। पिता से वह गृहत्याग के विषय पर खुले दिल से वाग्विवाद करते हैं और घर को छोड़ कर चले जाते हैं। किन्तु जैन मुनियों ने एक बड़ी जबर्दस्त मर्यादा स्थापित की हुई है। वह घर वालों की अनुमति के बिना किसी को भी मुनिदीक्षा नहीं देते। आचार्य खूबचन्द्र जी महाराज घर से तो चले आए, किन्तु इस मर्यादा की दीवार ने उनके मार्ग को एक दम रोक दिया। परन्तु वह तो अपने निश्चय पर पर्वत के समान अचल थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था

कि सब प्रकार की कठिनाइयों को पार करके भी जिनदीक्षा ग्रहण की जावे। अस्तु, उन्होंने अपने पिता को अनुमति देने का संदेश भेज कर अपने आपको फिर एक कठिन परीक्षा के लिये तय्यार किया। वास्तव में यह परीक्षा संसार की सब से कठिन परीक्षा थी। पिता ने आपको निम्बाहेडा बुला कर आपके सामने आपकी पत्नी को कर दिया। वर्तमान पुस्तक का इस प्रसंग पर होने वाला पति पत्नी संवाद वास्तव में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इस संवाद को पढ कर सहसा यह उपमा मन में आ जाती है कि एक निर्बल प्राणी एक अत्यन्त ढालू पर्वत पर खडा है। उसको एक स्त्री नीचे की ओर खींच रही है, किन्तु एक पुरुष उसको ऊपर की ओर खींच रहा है। आचार्य श्री का आत्मा वास्तव में उस समय संसार रूपी अत्यन्त ढलुवा पहाडी पर खडा था जिसको उनकी पत्नी नीचे को खेंचती थी और आचार्यश्री उसको ऊपर को खैंच रहे थे। पहाडी से नीचे की ओर को खैंचने वाला व्यक्ति कैसा ही निर्बल होने पर भी ऊपर से खेंचने वाले बलवान से बलवान पुरुष को भी नीचे को खैंच लेता है, किन्तु आचार्य सुखचन्द्र जी अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। उन्होंने अपनी तर्क शक्ति से न केवल अपनी पत्नी को निरुत्तर कर दिया, वरन उससे दीक्षा लेने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वास्तव में पति पत्नी का यह संवाद बुद्ध के 'मार विजय' वाली घटना को स्मरण कराता है।

यह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री ने अपने कल्याण के

लिये एक सती अबला को छोड कर उच्चकोटि की स्वार्थपरता का परिचय दिया। किन्तु वर्तमान ग्रन्थ को पढने से इस प्रश्न का उत्तर भी अपने आप ही मिल जाता है। यद्यपि घर से आप स्वार्थभावना से पृथक् हुये थे, किन्तु आपके मन मे सदा परोपकार के भाव लगे रहे अतएव आपने पूरे वर्ष भर सामान्य रूप से और चातुर्मास्य मे विशेष रूप से कल्याणकारी उपदेश देकर सदा ही जनता का कल्याण किया। इतना ही नही, वरन् आप कल्याण के इसी सदेश को सुनाने के लिये उसी प्रकार अपने नगर निम्बाहेडा मे गये, जिस प्रकार गौतम बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और पिता शुद्धोदन को उपदेश देने के लिये कपिलवस्तु गये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि बाद मे आचार्यश्री की पत्नी भी जैनदीक्षा को लेकर आर्यिका बन गई और अब घोर तपस्या कर रही है।

वर्तमान पुस्तक मे आचार्य श्री नूरचन्द्र जी महाराज के चरित्र के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती पाच आचार्यो का सक्षिप्त चरित्र देकर उनके शिष्यों के नाम भी दिये गये है। इन सब बातों को देखकर यह कहना पडता है कि इस ग्रन्थ का नाम "आदर्श-चरित्रम्' ठीक ही रखा गया है।

यह कहा जा सकता है कि आदर्श चरित्र तो अन्य सम्प्रदाय के साधुओं का भी हो सकता है। किन्तु उन महानुभावो के प्रति पूर्ण आदर प्रकट करते हुए भी हम इस युक्ति को नहीं मान सकते। हमारी सम्मति मे अहिंसा ससारका सर्वोत्तम धर्म है

कि सब प्रकार की कठिनाइयों को पार करके भी जिनदीक्षा ग्रहण की जावे। अस्तु, उन्होंने अपने पिता को अनुमति देने का संदेश भेज कर अपने आपको फिर एक कठिन परीक्षा के लिये तय्यार किया। वास्तव में यह परीक्षा संसार की सब से कठिन परीक्षा थी। पिता ने आपको निम्बाहेडा बुला कर आपके सामने आपकी पत्नी को कर दिया। वर्तमान पुस्तक का इस प्रसंग पर होने वाला पति पत्नी संवाद वास्तव में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इस संवाद को पढ कर सहसा यह उपमा मन में आ जाती है कि एक निर्बल प्राणी एक अत्यन्त ढालू पर्वत पर खडा है। उसको एक स्त्री नीचे की ओर खींच रही है, किन्तु एक पुरुष उसको ऊपर की ओर खींच रहा है। आचार्य श्री का आत्मा वास्तव में उस समय संसार रूपी अत्यन्त ढलुआ पहाडी पर खडा था जिसको उनकी पत्नी नीचे को खेंचती थी और आचार्यश्री उसको ऊपर को खैंच रहे थे। पहाडी से नीचे की ओर को खैंचने वाला व्यक्ति कैसा ही निर्बल होने पर भी ऊपर से खैंचने वाले बलवान् से बलवान् पुरुष को भी नीचे को खैंच लेता है, किन्तु आचार्य सूर्यचन्द्र जी अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। उन्होंने अपनी तर्क शक्ति से न केवल अपनी पत्नी को निरुत्तर कर दिया, वरन् उससे दीक्षा लेने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वास्तव में पति पत्नी का यह संवाद बुद्ध के 'मार विजय' वाली घटना को स्मरण कराता है।

यह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री ने अपने कल्याण के

लिये एक सती अबला को छोड़ कर उच्चकोटि की स्वार्थपरता का परिचय दिया। किन्तु वर्तमान ग्रंथ को पढने से इस प्रश्न का उत्तर भी अपने आप ही मिल जाता है। यद्यपि घर से आप स्वार्थभावना से पृथक् हुये थे, किन्तु आपके मन में सदा परोपकार के भाव लगे रहे अतएव आपने पूरे वर्ष भर सामान्य रूप से और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कल्याणकारी उपदेश देकर सदा ही जनता का कल्याण किया। इतना ही नहीं, वरन् आप कल्याण के इसी सदेश को सुनाने के लिये उसी प्रकार अपने नगर निम्बाहेडा में गये, जिस प्रकार गौतम बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और पिता शुद्धोदन को उपदेश देने के लिये कपिलवस्तु गये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि बाद मे आचार्यश्री की पत्नी भी जैनदीक्षा को लेकर आर्यिका बन गई और अब घोर तपस्या कर रही है।

वर्तमान पुस्तक में आचार्य श्री सूर्यचन्द्र जी महाराज के चरित्र के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती पाच आचार्यों का संक्षिप्त चरित्र देकर उनके शिष्यों के नाम भी दिये गये हैं। इन सब बातों को देखकर यह कहना पडता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'आदर्श-चरित्रम्' ठीक ही रखा गया है।

यह कहा जा सकता है कि आदर्श चरित्र तो अन्य सम्प्रदाय के साधुओं का भी हो सकता है। किन्तु उन महानुभावो के प्रति पूर्ण आदर प्रकट करते हुए भी हम इस युक्ति को नहीं मान सकते। हमारी सम्मति मे अहिंसा संसारका सर्वोत्तम धर्म है

'अहिंसा परमो धर्मः' ।

भगवान् महावीर ने आज से अढाई सहस्र वर्ष पूर्व इसी अहिंसा का उपदेश दिया था और आज महात्मा गांधी भी उसी अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। अन्य धर्मों पर धार्मिक आक्षेप न करते हुए भी हम को यह कहने के लिये विवश होना पड़ता है कि अहिंसा धर्म का पालन जैनियों के समान संसार का अन्य कोई धर्म नहीं करता। जैनियों के अतिरिक्त संसार में इसाई और बौद्ध भी अहिंसा के प्रचारक बनने का दावा करते हैं। किन्तु इन दोनों ही धर्मों में मांसभक्षण को वैध माना है गया। बाइबिल में कई स्थलों पर स्वयं ईसा मसीह के मांस भक्षण करनेका उल्लेख किया गया है। बौद्ध धर्म में तो मृतक प्राणी का मांस खाने में कोई पाप ही नहीं माना जाता। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष के बुद्ध चरित्र को देखने से प्रगट है कि बुद्ध की मृत्यु उस रोग के कारण हुई थी जो उसको शूकर का मांस न पचने के कारण हुआ था। बौद्ध साधु आज कल भी अधिक संख्या में मांस खाते हैं। वर्तमान समय के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु महापंडित राहुल सांकृतायन जी जब हम से दिसम्बर १६३६ में स्वर्गीय बैरिस्टर काशी प्रसाद जायसवाल के स्थान पर पटना में मिले तो उन्हों ने यही हास्य किया, "शास्त्री, जी आपको मोटा होने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि आप मांस नहीं खाते?"

इसमें कोई संदेह नहीं कि बुद्ध ने प्राचीन काल में भगवान महावीर के समान वेदों के नाम पर की जाने वाली पशु हिंसा

दा निरोध किया था, किंतु इसके साथ ही उन्हों ने मृतक मास खाने का विधान भी कर दिया था। वास्तव में बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग है। वह न तो जैनियों के समान घोर तपश्चरण करके शरीर को कष्ट देने का ही समर्थन करता है और न प्राचीन काल के वैदिक याजकों एवं वाममार्गियों के समान अत्यन्त भोगमय जीवन व्यतीत करने को ही पसन्द करता है। इसी लिये उसने भोजन के विषय में भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते हुए मृतक मास का विधान किया है। सभवत यहा इस बात को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि मास भक्षक कभी भी पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। महात्मा गाधी ने भी इसी लिये अहिंसा के अनुयाइयों को मास भक्षण न करने का आदेश दिया। बल्कि महात्मा जी तो इससे आगे यहा तक बढ गए कि उन्होंने प्राणियो के दूध तक का परित्याग कर दिया। केवल प्राण रक्षा के ध्यान से डाक्टरों के अत्यत अनुरोध से बकरी के दूध की अपने लिये छूट रखी हुई है। यहा एक बात अत्यत रोचक है। गौतम बुद्ध ने अपने अनुयाइयो मे मृतक मास का विधान किया तो महात्माजी मतक चर्म का विधान करते है। उनका कहना है कि प्राणियों को उसी प्राणि के चमडे का जूता पहिनना चाहिये जो अपने आप मर गया हो। कसाई खाने में मारे हुए प्राणी के चर्म के जूते पहिनने के आप घोर विरोधी हैं। किंतु आचार्य श्रीखूबचन्द जी महाराज इससे भी इतना आगे निकल गए है कि वह जूता मृतक मास का जूता तो क्या

पैर मे कोई भी वस्तु नही पहिनते । जैन मुनियों का यह नियम है कि वह अपने आगे की चार हाथ भूमि को देखकर नगे पाव ही चला करते है, जिससे कोई प्राणि उनके पाव के नीचे न आ जावे ।

वास्तव मे ऐसे चरित्र को ही आदर्श चरित्र कहना चाहिये और यही 'आदर्श चरित्र' है ।

इति शम

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री M O Ph , H M,D
काव्य-साहित्य तीर्थ आचार्य,
प्राच्य विद्या वारिधि, आयुर्वेदाचार्य ।
८११ धर्मपुरा देहली
१६ जनवरी १६३८ ई० ।



चिरञ्जीव बाबू सूरजमल जी मुन्शी और उनके पूज्य पिता
धर्म प्रेमी स्वर्गीय लाला लोटनमल जी जैन जौहरी
माली वाडा देहली

* वन्दे वीरम् *

आदर्श चरितम्

प्रथम परिच्छेद

मङ्गलाचरण

श्रीवीरः सर्वदिग्गैः कनकरुचितनूरोचिरुद्दीप्तदीपै-
र्मङ्गल्यःसोऽस्तु दीपोत्सव इव जगदानन्दसन्दर्भकन्दः।
सूक्तिर्दिव्यप्रभीयं मृदुविशदपदा मानसे धीयमाना,
भव्यानां भव्यभूत्यै भवतु भवतुदे भावना भावितानाम् १॥

भावार्थ—जो सब दिशाओं में व्याप्त, सुवर्ण कान्ति वाले शरीर की प्रभा रूपी प्रज्वलित दीपों से जगत में पूर्ण आनन्द प्रद, माङ्गलिक दीपोत्सव के समान हैं। तथा जिनकी दिव्य प्रभा संयुक्त मधुर और स्पष्ट-वाक्य-सदर्भित, दिव्य भाषा, मोक्षार्थी भव्य प्राणियों के हृदयों को पवित्र करने वाली तथा कल्याणकारी है। वे ही परम पवित्र वीर भगवान् सब के लिए मङ्गल प्रदाता हों ॥१॥

जयतु दुर्नयपङ्कजनीवने, हिमततिर्मतिकैरवकौमुदी ।
शमयितु तिमिराखि जने महाघृजिनभाजिनभा जिनभारती

भावार्थ—वीतराग प्रभु की वाणी, दुर्नीति रूपी कमल। वन ओस के समान, बुद्धि रूपी कुमोदिनी को विकास करने के लि चद्रिका के समान, तथा पाप रूपी अन्धकार को निवारण कर के लिए दिव्य प्रभा के समान है। इस पवित्र जिन वाणी सदैव जय हो ! विजय हो !! ॥१॥

यैः क्षुण्णाः प्रसरद्विवेकपविना कोपादिभूमिभृतो-
योगाभ्यासपरश्वधेन मथितोयैर्मोहधात्रीरुहः ।
बद्धः संयमसिद्धमन्त्रविधिना यैः प्रौढकामज्वरः,
तान्मोक्षैकसुखानुपङ्गरसिकान्वन्दामहे योगिनः ॥२॥

भावार्थ—जिन साधुओं ने अपने अपूर्व विस्तृत ज्ञान रू वज्र के द्वारा क्रोधादि पर्वतों को चूर्ण विचूर्ण कर डाला है तप रूपी तीक्ष्ण कुल्हाडे द्वारा मोह रूपी वृक्ष को समूल नष्ट क डाला है। और सयम रूपी सिद्ध-मन्त्र द्वारा इस दुर्जय काम ज को बाँध लिया है। उन मोक्ष रूपी अक्षय सुख के अनुरागी, मुक्ति रसिक साधुजनों को सादर वन्दना करते हैं ॥ २ ॥

मोहोयत्परिसेवया विघटते ज्ञान चितोभासते,
भव्याना परिसेवनीयः सुपथोयस्माच्च संजृंभते
तिर्यग्मानुपदेवनारकगतीस्त्यक्त्वा च कर्मव्रजम्,
मुक्तिं यान्ति जनाः सदा स जयतात् श्रीजैनधर्मोमहान्

भावार्थ—जिस जैन धर्म के सेवन करने से, मोह दूर हो जाता है, आत्म ज्ञान प्रतिभासित होता है, तथा जिसके द्वारा जनता नर्क, तीर्यंच, मनुष्य और देवगति एवं कर्मसमूह को नष्ट कर के मुक्ति को प्राप्त करती है। उसी जैन धर्म की सदैव जय हो। विजय हो ॥ ॥४॥

जैन साधुओं के लक्षण

मित्रे नन्दति नैव नैव पिशुने वेरातुरोजायते,
भोगे लुभ्यति नैव नैव तपसि क्लेश समालम्बते।
रत्ने रज्यति नैव नैव दृषदि प्रद्वेषमापद्यते,
जैनेऽस्मिन् प्रभवन्ति शुद्धहृदयाः मुक्तिप्रियाः साधवः॥५॥

भावार्थ—जैन सम्प्रदायानुयायी साधु साम्यवाद के प्रेमी होते हैं। अर्थात् वे शत्रु और मित्र पर सम भाव रखते हैं। शत्रुओं को देख कर उन पर क्रोध नहीं करते हैं। और न मित्रों को देख, उन पर अनुराग ही करते हैं। इसी प्रकार न तो वे भोगों मे लुब्ध होते हैं और न तपस्या से घृणा ही करते हैं। हीरे, पन्ने, रत्न, माणिक्य और पाषाण आदि को वे समान दृष्टि से देखते हैं। यों वे साम्यवादी साधु मोक्षाभिलाषी और शुद्ध हृदयी होते हैं॥५॥

गच्छ-परिचय

श्रीसिद्धार्थकुलाम्बराम्बरमणिश्रीवर्धमानप्रभोः-
पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः।

आसीद्वासवृन्दवन्दितपदद्वन्द्वः पदं सम्पदाम्,
तत्पट्टाम्बुधिचन्द्रमागणधरः श्रीमान् सुधर्माभिधः ॥६

भावार्थ— सिद्धार्थ कुल दिवाकर श्री वर्द्धमान स्वामी
चरण-रज सेवक सचरित्र आदर्श मुनि-मण्डल में अग्रगण्य,
द्वारा वन्दनीय, पवित्र चरण-युगल वाले, सम्पत्तियों के आ
और श्री वर्द्धमान प्रभु रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमा के तुल्य श्री
'सुधर्म स्वामी' नामक गणधर हुए ॥६॥

तद्गच्छाश्रयतोऽभूवुरनुपा गच्छाः पवित्राशया-
स्तन्मध्ये भुवि विद्यते च हुक्मीचन्द्राख्यगच्छोऽधुना
तत्रास्ते मुनिखूबचन्द्रसुमतिर्विश्वम्भराभामिनी,
भास्वद्भाललामकोमलयशः स्तोमः शमारामभूः ।

भावार्थ—श्री सुधर्म स्वामी के गच्छ में, उनके आज्ञानुवर्ती
अभिप्राय वाले अनेक गच्छ हुए हैं। जिनमें से एक पवित्र
श्री हुक्मीचन्द्र जी म० के नाम से विख्यात हुआ। जो इस
विद्यमान है। इन्हीं श्री हुक्मीचन्द्रजी म० की सम्प्रदाय में
चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्दजी महाराज, जो कि सद्बुद्धि
भण्डार हैं, सुशोभित हुए हैं। आपकी कोमल कीर्ति का
शांतिरूपी उपवन बन कर, पृथ्वी मण्डल के तेजस्वी लला
विस्तारित हो रहा है ॥७॥

सः श्रीयुक्तपोधनस्त्रिपथगा पाथः प्रवाहैरिव,
स्वैरं यस्य यशोभरैः क्षितितलं पावित्र्यमासूत्रितम् ।

गाम्भीर्यादिगुणोज्ज्वलः शुभपरः श्रीजैनधर्मे मतिः,
तस्याहं चरितं जनेषु विदितं वक्तु मवाम्युद्यतः ॥८॥

भावार्थ—गंगा जल के प्रवाह के समान, जिनके कीर्ति स
से, पृथ्वी-तल पवित्र हो गया है। उन्हीं,तपोधन नाथ, सौम्य-गाम
र्यादि गुणों से सम्पन्न, कल्याणकारी, जैन धर्म पर अटूट श्र
रखने वाले, मुनि श्री सूरचंदजी म० के परम आदर्श चरित्र
जो कि विश्व विख्यात है, वर्णन करने के लिये में प्रस्तुत हुआ ॥

जन्म भूमि

श्रीभारते भारतवर्षिराज्य, श्रीकान्तसामन्तकपूरप्राज्यम् ।
नव्वाबसाहेबयशोभिर्भ्राज्यं, समस्ति लक्ष्म्या भुविटोकराज

भावार्थ—इस धर्म प्राण भारतवर्ष में, कान्ति की वर्षा कर
वाला, क्षत्रिय राज पुत्रों के समूह से सुशोभित, समृद्धिशाली, रा
पुताना प्रान्त के अन्तर्गत, श्रीमान् नवाब साहब के यश से शोभ
यमान, लक्ष्मी से विलसित एक टोंक नामक राजस्थान है ॥६॥

सौभाग्यसौन्दर्यगते तरुण्याः, वक्षः स्थले राजति हारयष्टि
तथैव राज्ये शुभधामयष्टिः, निम्बाहेडा राजति पूः समष्टि

भावार्थ—उस टोंक नामक राजस्थान में भव्य-भवनों व
कतारों से सुशोभित, एक 'निम्बाहेडा' नामक परम मनोहर औ
सुन्दर नगर है। जो उस राजस्थान का भूषण है। वह ठीक इ
प्रकार शोभायमान है,जिस प्रकार कि किसी सौन्दर्य-संयुक्ता तरुण
के वक्ष-स्थल पर चन्द्रहार सुशोभित होता है ॥१०॥

धर्मैस्तपोभिः मुनिदर्शनैश्च, कालं नयन्तः पुरुषाः समस्ताः ।
भर्त्रानुरूपं शुभकृत्यलीनाः, राजन्ति नार्यश्च सुशीलवत्यः

भावार्थ—उस परम मनोहर, निम्बाहेडा नामक नगर के पुरुष धर्म-ध्यान, तप-त्याग और मुनि-दर्शनादि धार्मिक कृत्यों में, सदैव लीन रहते हैं। इसी प्रकार वहाँ की सती-साध्वी शीलवती स्त्रियाँ भी अपने पति देवों के अनुरूप ही शुभ धार्मिक कृत्यों को सानन्द सम्पन्न करती हुई सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं।

वंश-परिचय

तत्राभवच्छ्रीमहदोसवालः, वणिग्वरः श्रेष्ठिषु टेकचन्द्रः ।
जेतावताख्येऽतिपवित्रगोत्रे, व्यापारदक्षोऽब्धिसुताभिलाषी

भावार्थ—उस निम्बाहेड़ा नामक नगरी में ओसवाल जाति के श्री जेतावत शुभ गोत्रोत्पन्न, व्यापार में पूर्ण रूप से दक्ष श्रीयुत टेकचन्दजी नामक एक सेठ निवास करते थे ॥१२॥

पूर्वार्जितप्रबलपुण्यवशेन तस्य,
सन्न्यायमार्गसुकृतानुगतप्रवृत्तेः ।
पापप्रयोगविरतस्य गृहे समस्ताः
भेजुः स्थिरत्वमचिरादपि सम्पदश्च ॥१३॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी जेतावत अपने पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्योदय के प्रताप से सदैव न्यायोचित कार्यों में प्रवृत्त रहते थे। वे पाप प्रयोगों से सदैव प्रथक् रहते थे। और इन समस्त शुभ कार्यों के प्रताप से उन के घर में सब प्रकार की सम्पदाओं ने चिरस्थायी निवास किया था ॥१३॥

सद्धर्मसाधार्मिकपोषणेन, मुमुक्षुवर्गस्य सुतोषणेन ।
दीनादिदानैः स्वजनादिमानैः, स्वसम्पदो यः सफलीचकार

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी सा० ने अपनी प्राप्त लक्ष्मी को अपने स्वधर्मी भाइयों की रक्षा में, दीन-हीन व्यक्तियों को दान देने में, कुटुम्ब के सम्मानादि कार्यों में तथा मुनिराजों को निर्दोष आहारादि प्रदान करने में व्यय करके उसका सदुपयोग किया था ॥१४॥

गेन्दीबाइ बभूव तस्य गृहिणी शीलव्रतद्योतिनी,
तस्याः कुक्षिसुशुक्तिमौक्तिकसुताः सद्द्योतयाञ्चक्रिरे ।
चुन्नीलाल उदारचित्तपुरुषः श्रीखूबचन्द्राभिधो-
भोगीदास उदग्रबुद्धिलसितो दाडीमचन्द्रस्तथा ॥१५॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी की पत्नि का शुभ नाम गेंदीबाई था। जो परम सदाचारिणी और पतिव्रता थी। उसने अपनी पवित्र कुक्षि से, कुशाग्र बुद्धि वाले चार पुत्र-रत्नों को जन्म दिया जिनके शुभ नाम क्रमश चुन्नीलाल, खूबचन्द्र, भोगीदास और दाडिमचद्र रक्खे गये ॥१५॥

मोती रत्नाख्यके कन्ये, गेन्दी सा सोष्टसद्गुणे ।
पट्पन्तानयुतश्रेष्टोऽनेष्ठधर्मस्वभावतः ॥१६॥

भावार्थ—इन चार पुत्रों के अतिरिक्त श्रीमती गेंदीबाई की कुक्षि से दो कन्याएँ भी उत्पन्न हुई। जिनका शुभ नाम क्रमश मोतीबाई तथा रत्नबाई रक्खा गया। इस प्रकार चार पुत्र और दो

व्यापारोचितविद्यया कवितागुणैरुर्दूगिरालंकृतम्,
दृष्ट्वा यौवनशालिनं निजसुतं श्रीखूबचन्द्रं पिता ।
सौन्दर्यस्य निकेतनं च विशदं संसारसारं वपुः,
संसारस्थविशालशैलीमनसा दध्यौ विवाहाय सः ॥२४॥

विवाह और दाम्पत्य जीवन

भावार्थ—जब श्रीमान् सेठ टेकचन्द्रजी ने अपने सुपुत्र श्री खूबचन्द्र जी को व्यापार-विद्या, उर्दूभाषा और कवित्व-शक्ति आदि सद्गुणों से अलकृत तथा सौन्दर्य निकेतन सुन्दर शरीर सहित युवा अवस्था मे प्रवेश करते देखा तो अपनी सांसारिक परिपाटी के अनुसार उन्होंने उनका विवाह किसी सुयोग्य कन्या के साथ कर देना उचित समझा ॥२४॥

अट्ठानापुरवासिनः सुकुलभूगोराख्यगोत्रोद्भव,
देवीचन्द्रवणिग्वरस्य तनयामायूयुजत्सु सुना ।
कल्याऽऽदेऽरिसमुद्रनन्दवसुधा मार्गे शनौ पूर्णिमा,
तिथ्या साकरदेवीनामगृहणीं श्रीखूबचन्द्रोऽवृणत् ॥२५॥

भावार्थ—अट्ठाना (ग्वालियर स्टेट) निवासी, उच्च कुलीन, गोरा गोत्रोत्पन्न, सद्गृहस्थ श्रीमान सेठ देवीचन्द्रजी की सौभाग्यवती सुशील कन्या श्रीमती साकरदेवी के साथ, श्री टेकचन्द्र जी ने अपने पुत्र श्री खूबचन्द्रजी का वैवाहिक सम्बन्ध निश्चय किया और शुभ सवत् १९४६ विक्रमी के मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा शनिवार के दिन उन दोनों का परस्पर पाणिग्रहण हो गया ॥२५॥

सितरुचिशुचिवासोबिभ्रतीसम्भृताङ्गी,
निशदवदनकान्तिःसात्वराङ्ग व्यराजीत् ।
कनककमलिनीवस्वच्छगङ्गा तरङ्गा,
चलितलयितमूर्तिः स्पष्टदृष्टाम्बुजश्रीः ॥२६॥

भावार्थ—विवाह के पूर्व श्री सौभाग्याकारिणी साकरदेवी पूर्ण निर्मल उज्ज्वल स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर, अपनी अनुपम कांति द्वारा इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुई। जैसे कि पवित्र गंगा नदी के स्वच्छ जल, की उत्ताल तरङ्गों के अन्तर्गत अष्ट पत्र वाली सुवर्ण कमलिनी दैदिप्यमान् होती है ॥२६॥

अथ नवरविरश्मिस्मेरकाश्मीरनीरै,
परिणयनदिनादौ लब्धरागासु दिक्षु
व्यधुरुदयदनङ्गं मङ्गलस्नानमस्याः,
पतिसुतपितृमातृभ्रातृवत्योयुवत्यः ॥२७॥

भावार्थ—प्रणय-बन्धन के पूर्व दिवस, जब कि नूतन बाल-सूर्य की लाल-लाल किरणों से, समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। उस पवित्र मङ्गल प्रभात में, सौभाग्यवती युवतियों ने मिल कर सौभाग्याकारिणी श्री साकरदेवी को मङ्गल स्नान करवाया ॥२७॥

जितवलयविलासं पाणिदेशेयदस्याः,
परिणयमयसूत्रास्त्रमास्त्रिमात्रा ।
सपदिमदनदेवस्तद्विलोकी त्रिलोकी,
विजयिनि निजचापेज्यापरिस्पन्दमैच्छत् ॥२८॥

भावार्थ—श्री साकरदेवी के हाथ में उसकी माता ने कड़े की शोभा को लज्जित कर देने वाला जो 'कगन डोरा' बाधा था। वह इस प्रकार दिखाई दे रहा था, कि मानो किसी ने त्रिलोक विजयी कामदेव को जय करने के लिए, धनुष्य की प्रत्यञ्चा को चढ़ाया हो

असमकुसुमपूजा लीनसद्रूयः समुद्यन्,
मधुकरकुलरावैराशिषं पुण्यराशिम् ।
यदिहपदनतायां गोत्रदेव्योऽप्यवोचन्,
किमुकिमुनतदोचुः श्रद्धयागोत्रनद्धा ॥२६॥

भावार्थ—वसन्तोत्सव के समय कामदेव की पूजा में लीन उस साकर देवी नामक युवती के लिए गोत्र देवियों ने श्रद्धा में लीन हो कर भ्रमरों की झंकृति द्वारा क्या क्या आशिर्वाद नहीं दिये ? अर्थात सब प्रकार के शुभाशीर्वाद दिये ॥२६॥

रसनिवशमचालीद्बिभ्रतोशुभ्रवेशम्,
लसितमुरसिहारं कङ्कणं हस्तमध्ये ।
शिरसि ललितवेणिं शुभ्रवर्णा विनम्रा,
कलितचलितकाञ्चीं मण्डपं लग्नकस्य ॥३०॥

भावार्थ—तदनन्तर श्री साकरदेवी ने, प्रेमाधीन होकर शुभ्र वेष को धारण किया। वक्षस्थल पर हार, हाथ में कङ्कण, शीश पर सुन्दर शिखा तथा कटि-प्रदेश में एक सुन्दर नीचे लटकती हुई, चंचल काञ्चीदाम (कटि मेखला) को धारण करती हुई लग्न मंडप की वेदिका में उपस्थित हुई ॥३०॥

इहमुहुरवधाना तैः पलैश्चाचारैश्च,
द्विजवचनविवक्ते साधिते लग्नमन्धौ,
गुरुरथवरवध्वोर्मङ्गलातोद्यनादैः ।
विलसति समकालं मीलयामास पाणी ॥३१॥

भावार्थ—तत्पश्चात शुभ लग्न मे, पुरोहितजी ने सुन्दर वाजिन्त्रादि की मधुर ध्वनि के साथ, बड़े समारोह पूर्वक वर और वधू दोनों के कोमल हाथों को परस्पर सम्मिलित करवा दिये। अर्थात पाणिग्रहण सस्कार कर दिया ॥३१॥

शिथिलकरसरोजा लज्जमाना निकीर्य,
ज्वलितहुतवहान्तर्लाजमुष्टिं वधूः सा ।
अकुरुतगुरुनाद्या किञ्चिदाचारधूम,
गृहणमथमुखाब्जोत्सङ्गभृङ्गायमानम् ॥३२॥

भावार्थ—श्रीमती माकरदेवी ने अपने परम कोमल हस्त रूपी कमल द्वारा पुरोहित जी के कथनानुसार लज्जित हो कर जाज्वल्यमान होमाग्नि मे धान्य को डाला। और उस समय यज्ञ के कुछ धूम्र को ग्रहण किया। उस धूम्र से उसका मुख रूपी कमल भ्रमर सयुक्त दिखाई दिया ॥३२॥

इत्थ ता गृहिणीं विवाहमगुदः श्रश्रोस्तदा प्रेषितः,
सप्राप्य स्वपुर जनै समुदितैर्भूपाभिः सभूषितः।
शीर्षस्थापितपात्रया च मधुना वध्वानि बद्धाञ्चलः,

पौरन्ध्रीशुभगीतिनाप्यनुगतोगेहस्य द्वारं ययौ ॥३३॥
तत्रानन्दपरस्तया स निवसन् वाणिज्यदक्षः सुधीः,
लक्ष्म्याश्चार्जनतः पितुः सुमनसः प्रीतिः परं प्रार्जयन् ।
चित्ते-धर्मपरः सदा सुखकरोमातुश्च सेवापरः,
प्रीत्यानन्दकरोऽभवत् स सुजनः सर्वस्य सन्तोषदः ॥३४॥

भावार्थ—इस प्रकार विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात, श्री खूबचन्द्र जी अपनी भार्या श्रीमती लाडकदेवी सहित, अपने सास-श्वसुर से विदा हुए। और अनेक प्रकार के आभूषणों तथा पुर निवासी जनों से सयुक्त होकर उन्होने अपने ग्राम निम्बाहेड़ा की ओर प्रस्थान कर दिया। निम्बाहेड़ा में प्रवेश करते ही पुरन्धरियों ने नाना प्रकार के मगल गीत गाए। और बधाइयाँ दीं फिर बड़े ही स्वागत समारोह पूर्वक उन नव विवाहित वर-वधू को घर पर लाया गया। अब हमारे चरित्रनायक व्यवसाय-कुशल श्री खूबचन्द्र जी अपने वाणिज्य कौशल द्वारा अटूट लक्ष्मी का संचय करके अपने पिता श्री टेकचन्द्रजी के मन को परम सतुष्ट करने लगे। तथा यथोचित सेवा-भक्ति द्वारा माता जी के चित्त को भी पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार वे प्रेम-भाव तथा धार्मिक भाव से अपने गृहस्थ-जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करते हुए जनता के हृदय को आनन्दित करने लगे ॥३३ ३४॥

जैनागम तत्वनिधि, त्यागमूर्ति, श्रीमज्जैनाचार्य, परमप्रतापी

पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज।



(चित्र केवल परिचय के लिये है)

जन्म सं० [illegible] दीक्षा सं० [illegible] आचार्यपद सं० [illegible]।

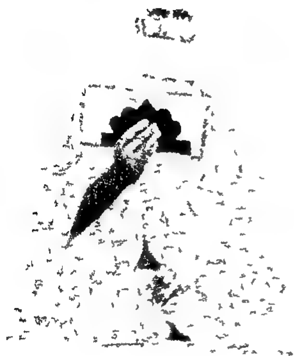
पौरन्ध्रीशुभगीतिनाप्यनुगतोगेहस्य द्वारं ययौ ॥३३॥
तत्रानन्दपरस्तथा स निवसन् वाणिज्यदक्षः सुधीः,
लक्ष्म्याश्चार्जनतः पितुः सुमनसः प्रीतेः पदं प्रार्जयन् ।
चित्ते-धर्मपरः सदा सुखकरोमातुश्च सेवापरः,
प्रीत्यानन्दकरोऽभवत् स सुजनः सर्वस्य सन्तोषदः ॥३४॥

भावार्थ—इस प्रकार विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात, श्री खूबचन्द्र जी अपनी भार्या श्रीमती साकरदेवी सहित, अपने सास-श्वसुर से विदा हुए। और अनेक प्रकार के आभूषणों तथा पुर-निवासी जनों से सयुक्त होकर उन्होंने अपने ग्राम निम्बाहेड़ा की ओर प्रस्थान कर दिया। निम्बाहेड़ा मे प्रवेश करते ही पुरन्धरियों ने नाना प्रकार के मगल गीत गाए। और बधाइयाँ दीं फिर बड़े ही स्वागत समारोह पूर्वक उन नव विवाहित वर-वधू को घर पर लाया गया। अब हमारे चरित्रनायक 'व्यवसाय-कुशल श्री खूबचन्द्र जी अपने वाणिज्य कौशल द्वारा अटूट लक्ष्मी का संचय करके अपने पिता श्री टेकचन्द जी के मन को परम सतुष्ट करने लगे। तथा यथोचित सेवा-भक्ति द्वारा माता जी के चित्त को भी पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार वे प्रेम भाव तथा धार्मिक भाव से अपने गृहस्थ-जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करते हुए जनता के हृदय को आनन्दित करने लगे ॥३३ ३४॥

आदर्श चरितम्

जैनागम तत्त्वारिधि, त्यागमति, श्रीमज्जैनाचार्य, परमप्रतापी

पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज।



(चित्र रेवल

म १०३०, दीक्षा स १९५०, [illegible]

पौरन्ध्रीशुभगीतिनाप्यनुगतोगेहस्य द्वारं ययौ ॥२३॥
तत्रानन्दपरस्तया स निवसन् वाणिज्यदक्षः सुधीः,
लक्ष्म्यारचार्जनतः पितुः सुमनसः प्रीतेः पदं प्राजेयन् ।
चित्ते-धर्मपरः सदा सुखकरोमातुश्च सेवापरः,
प्रीत्यानन्दकरोऽभवत् स सुजनः सर्वस्य सन्तोषदः ॥२४॥

भावार्थ—इस प्रकार विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात, श्री खूबचन्द्र जी अपनी भार्या श्रीमती सांकरदेवी सहित, अपने सास श्वसुर से विदा हुए। और अनेक प्रकार के आभूषणों तथा पुर-निवासी जनों से संयुक्त होकर उन्होंने अपने ग्राम निम्बाहेड़ा की ओर प्रस्थान कर दिया। निम्बाहेड़ा में प्रवेश करते ही पुरन्धरियों ने नाना प्रकार के मंगल गीत गाए। और बधाइयाँ दीं फिर बड़े ही स्वागत समारोह पूर्वक उन नव विवाहित वर-वधू को घर पर लाया गया। अब हमारे चरित्रनायक 'व्यवसाय-कुशल श्री खूबचन्द्र जी अपने वाणिज्य कौशल द्वारा अटूट लक्ष्मी का संचय करके अपने पिता श्री टेकचन्द्जी के मन को परम संतुष्ट करने लगे। तथा यथोचित सेवा-भक्ति द्वारा माता जी के चित्त को भी पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार वे प्रेम-भाव तथा धार्मिक भाव से अपने गृहस्थ-जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करते हुए जनता के हृदय को आनन्दित करने लगे ॥२३ २४॥

द्वितीय परिच्छेद

वैराग्य की उत्पत्ति

ज्यादिकलोककार्यकरणाद्द्रोधन प्राजेयन्,
याङ्कुरभानपूर्णमनसा श्रीखूबचन्द्रः सुधीः ।
चापि विदन् मुनींश्च सततं सवन्दमानः मुहु-
ध्ये गमया बभूव स युवा तुर्याणि वर्षाणि सः ॥२५

ावार्थ—इस प्रकार वाणिज्य विद्या विशारद श्री खूबचन्द्रजी ने
अवस्था में केवल चार वर्ष रह कर, अटूट धन-राशि का
न करते हुए, निर्ग्रंथ मुनियों का भी पर्याप्त सत्संग किया ।
केवल इन चार वर्षों में ही उन्होंने मुनिराजों की सेवा
और चरण-वन्दनादि करते हुए उनसे सच्चे धर्म का
समझ कर उसे हृदयंगम किया । अतः अब उनके हृदय में
का सचार हो गया ॥२५॥

भूत्वेत्थं सगृही यदापि मुनिभिः शान्तोपदेशामृतै-
र्वैराग्याकुरितो बभूव सुमतिः प्रोवाच जीवं स्वकम् ।
रे तीव्रोत्कटकूटचित्तवशिना स्वात्मन्त्वया हारितः,
संसारे शुभरत्नतुल्यनृभवोऽप्यस्व शीघ्रं हितम् ॥३६॥

भावार्थ—एक बार, सद्गृहस्थ श्री सूरचन्द्रजी को किसी निर्ग्रंथ मुनि के उपदेशामृत पान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुनि महाराज के ओजस्वी व्याख्यान से, उनके हृदय मे वैराग्य का स्थायी अंकुर उत्पन्न हो गया। इस सद्बोध के प्रभाव से अब वे अपनी आत्मा को समझाने लगे, कि हे आत्मन्! तूने इस महान् छली और प्रपची चित्त के वशीभूत होकर, इस संसार प्रसिद्ध, रत्नोपम मानव-जन्म को, निरर्थक ही खो दिया। अरे अब तो अपने हित का समझ ॥३६॥

मुक्त्वा दुर्मतिमेदिनीगुरुगिरा संशील्यशीलाचलं,
बद्ध्वा क्रोधपयोनिधिं कुटिलतालङ्का क्षपित्वा क्षणात् ।
जित्वा मोहदशाननं निधनतामाराध्य वीरव्रतं,
श्रीमद्राम इवाप्तमुक्तिवनिता युक्तो भविष्याम्यहम् ॥३७॥

भावार्थ—अब मैं इस दुर्मति रूपी अयोध्या को, गुरु स्वरूप पिता की आज्ञा से छोड़ता हुआ शील स्वरूप चित्रकूट पर जाकर क्रोध रूपी समुद्र को बाँध लूँ। और कुटिलता स्वरूप लंका को शीघ्र ही नाश करके मोह रूपी रावण को जीत लूँ। तथा निधनता स्वरूप

वीर व्रत की आराधना मे तत्पर होकर राम के समान मुक्ति रूपी सीता से सयुक्त हो जाऊँ ॥३७॥

औचित्याद् शुकशालिनीं हृदय ! रे शीलाङ्गरागोज्ज्वला-
श्रद्धा ध्यानविवेकमण्डनवतीङ्कारुण्यहाराङ्किताम् ।
सद्बोधाञ्जनरञ्जिनी परिलसच्चारित्रपत्राङ्कुरा-
निर्वाणं यदि वाञ्छसीह परम क्षान्ति प्रिया भावय ॥३८॥

भावार्थ—हे हृदय ! यदि तू वास्तव मे निर्वाण प्राप्ति की कामना करता है, तो औचित्य रूपी वस्त्रो से सुसज्जित शीलाङ्ग रूपी समुचित अनुराग से उज्ज्वल, श्रद्धा ध्यान और सद् विचार रूपी आभूषणों से अलकृत, करुणारूपी हार से सुशोभित सद्बोध रूपी अञ्जन से युक्त और सच्चारित्र रूपी पत्राकुर से मण्डित, उत्तम क्षमा *रूपी स्त्री को प्राप्त करने की भावना कर ॥३८॥*

सत्यं बुद्बुद्भङ्गुरं धनमिदं दीपप्रकम्पं वपु-
स्तारुण्यं तरले क्षणास्थितरलं वियु चलं दोर्बलम् ।
रे रे जीव ! गुरुप्रसादवशतः किञ्चिद्विधेहि द्रुत-
स्वात्मध्यानतपोविधानविषयं श्रेयः पवित्रं परम् ॥३९॥

भावार्थ—निस्सन्देह यह धन जल के बुद् बुदे के समान,क्षण भगुर है। शरीर, दीप प्रकम्प के समान चञ्चल है। यह यौवन, स्त्री के नेत्र-कटाक्ष की तरह क्षणस्थायी है। और यह बाहुबल, चञ्चल चपला के सदृश अस्थिर अर्थात् चलायमान है। अत हे

आत्मन् ! सद्गुरु की कृपा द्वारा, तू आत्म ध्यान तथा तप-सयम विषयक परम पवित्र विधान को सम्पादन कर के शीघ्र ही कुछ आत्म-कल्याण कर ले ॥३६॥

पिता-पुत्र-सम्वाद

आत्मध्यानरते समुद्यतमतिं श्रीटेकचन्द्रः पिता-
वात्सल्याब्धिनिषिक्तशुद्धमनसा वाणीमभाणीत्सुतम् ।
आशा ते महती ममास्ति मम तद्वृद्धस्थितिं पालय-
त्वं मद्गेहधुरं वहाहमधुना धर्मं करोमि स्थिरः ॥४०॥

भावार्थ—इस प्रकार अपने पुत्र श्री रत्नचन्द्र जी की बुद्धि को आत्म ध्यान मे तल्लीन देख कर श्रीमान् सेठ टेकचन्द जी, प्रेम के महासागर मे लीन हो गए। और मोह के वशीभूत हो कर अपने पुत्र से कहने लगे, कि हे पुत्र ! मैं तो तुझ से बड़ी भारी आशा बान्धे बैठा हूँ। तू मुझ वृद्ध की स्थिति का पालन करते हुए, मेरे घर के भार को वहन कर, कि जिससे मैं अब इस सासारिक पचडे से विश्रान्ति लेकर धर्माराधना मे तत्पर हो सकूं ॥४०॥

त्वत्सत्वं मम जीवनं मम गृहस्तम्भः समर्थः पुनः-
र्गार्हस्थ्यं परिपालयत्वमधुना ससैन्यशीलव्रतम् ।
भार्या सत्कुलजा पवित्रचरिता संसारशस्यावनिः,
कालेन फलवाञ्छया शुभमते ! गार्हस्थ्यधर्मी भव ॥४१॥

भावार्थ—हे पुत्र ! तुझे अब इस समय अपने शीलव्रत की समु-

चित रक्षा करते हुए गृहस्थ धर्म को योग्य रीति से पालन करना चाहिए। हे वत्स ! तू ही मेरे गृह का सुदृढ और सुन्दर मूल स्तम्भ है। और तू ही मेरा जीवन है ! हे सुमति प्रवीण ! तेरे घर में सत्कुलोत्पन्न, परम सदाचारिणी और सुपुत्र रत्न प्रसविनी, रत्न गर्भा वसुन्धरा के तुल्य पतिव्रता भार्या है। अतएव, हे बेटा ! तुझे फल की वाञ्छा सहित कुछ काल तक अवश्य ही गृहस्थ धर्म का पालन करने में कटिबद्ध होना चाहिए ॥४१॥

येनेह क्षणभङ्गुरेण वपुषा क्लिन्नेन सर्वात्मना-
सद्व्यापारनियोजितेन परमं निर्वाणमप्याप्यते ।
प्रीतिस्तेन हहा पितः !-प्रियतमा संपर्करागोद्भवा-
क्रीता स्वल्पसुखाय मूढमनसा कोट्या मया काकिणी ॥४२

भावार्थ—अपने पूज्य पिता श्री टेकचन्दजी के वचनों को सुन कर श्री खूबचन्दजी उन से नम्रता पूर्वक निवेदन करने लगे, कि हे पूज्यपाद पिताजी ! जिस क्षणभंगुर और घृणास्पद शरीर को अच्छे कार्य में लगाने से, मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। उसी शरीर को, स्त्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले, क्षणिक सुख के लिए, प्रीति का पात्र बनाना, महान्-भूल करना है। और यह भूल भी कोई साधारण भूल नहीं, किंतु एक करोड रुपये के बदले एक कोडी को खरीदने वाले व्यक्ति की भूल के समान महान्- भयकर भूल है ॥४२॥

सौख्यं मित्रकलत्रपुत्रविभवं भ्रंशादिभिर्भङ्गुरं,
कासश्वासभगंदरादिभिरिदं व्याप्तं वपुर्व्याधिभिः ।
सर्वं पूर्णमुपैति सन्निधिमसौ कालः करालाननः,
कष्टं किंकरवाण्यह तदपि यच्चित्तस्य पापे रतिः ॥४३॥

भावार्थ—पुन हे पिता जी ! मित्र, स्त्री, और पुत्रादि के वैभव का सुख भी क्षणिक है। और यह शरीर भी खाँसी, श्वाँस, तथा भगदरादि रोगों का अटूट भण्डार है। जिस समय इस देह को विकराल काल ग्रसित करता है। उस समय बन्धु-बान्धवादि कोई भी कुटुम्बी सहायक नहीं हो सकता है। इतना जानते हुए भी आश्चर्य तो यह है, कि फिर भी सासारिक प्राणी पाप-साधना में ही, खुशी-खुशी तत्पर रहते हैं। और आत्म-हित की ओर झाँकते तक नहीं हैं ॥४३॥

कारुण्याभ्न सुधारसोऽस्ति हृदयद्रोहाभ्न हालाहल-
वृत्तादस्ति न कल्पपादप इह क्रोधान्न दावानलः ।
संतोषादपरोऽस्ति न प्रियसुहृल्लोभान्न चान्योरिपु-
र्युक्तायुक्तमिदं मया निगदितं यद्रोचते तत्कुरु ॥४४॥

भावार्थ—दया से श्रेष्ठ और कोई दूसरा अमृत नहीं है। वैर-भाव से अधिक अन्य कोई हलाहल विष नहीं है। लोभ के समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। और सन्तोष के समान अन्य कोई परम मित्र नहीं है। पिताजी ! यह सब युक्तिसगत नम्र निवेदन मैंने

आपकी सेवा में कर दिया है। अतएव अब आप जैसा भी उचित समझें, वैसी आज्ञा प्रदान करें ॥४४॥

कवलयति समग्रं वस्तुजातं कृतान्तः,
अविरतकृतयत्नः क्रूरभावोपपन्नः।
क्षणमपि न कदाचित्तस्य पार्श्वं गतस्य,
भवति मनसि जन्तौ नैव कारुण्यभावः ॥४५॥

भावार्थ—क्रूर भाव से संयुक्त हो कर जब मृत्यु सब वस्तुओं का संहार करती है। तब उस समय सब प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। अर्थात् मृत्यु के हृदय में, किसी भी प्राणी के प्रति दया का भाव उत्पन्न नहीं होता है ॥४५॥

शरीरं ममास्तीति मत्वा विमोहात्,
प्रसक्तिं दर्शमात्रं कुर्याः कदाचित्।
मृदाः निर्मिताः पौद्गलाः सर्वभावाः-
स्वतत्वेषु लीनाः भवन्ति क्षणेन ॥४६॥

भावार्थ—मोह के वशीभूत हो, 'यह शरीर मेरा है' ऐसा मान कर किसी भी व्यक्ति को अपने शरीर से प्रेम नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह सब पौद्गलिक पदार्थ मिट्टी वगैरह पाँच तत्वों से बने हुए हैं। और क्षण भर में अपने-अपने तत्वों में लीन हो जाते हैं ॥४६॥

तिमिरमतिनियन्त्री श्रीगुरुज्ञानगोष्टी,
भवजलनिधिनौका तत्कृपापूर्णदृष्टिः ।
विषयरतिविमुक्तिर्यत्र दानानुरक्तिः,
शमदमयमशक्तिर्मन्मथाराति भक्तिः ॥४७॥

भावार्थ—सद्गुरुओं की ज्ञान पूर्ण गोष्ठी, अज्ञानान्धकार को नष्ट कर देती है। उनकी कृपा-पूर्ण दृष्टि, ससार रूपी समुद्र के लिए नौका के समान है। विषय-प्रेम का त्याग ही दान है। शम,दम एव यमादि की शक्ति का सचय करना तथा काम शत्रु बनना ही वास्तविक भक्ति है ॥४७॥

श्रुतिमतिबलवीर्यप्रेमरूपायुरङ्ग-
स्वजनतनयकान्ता भ्रातृपित्रादिसर्वम् ।
तितउगतजलं वा न स्थिरं वीक्षतेऽङ्गी,
तदपि बत विमूढो नात्मकृत्यं करोति ॥४८॥

भावार्थ—श्रवण-शक्ति, बुद्धिबल, वीर्य, प्रेम, आयु और शरीर तथा अपने बन्धु-बाधव पुत्र, स्त्री, भाई और पितादि सब चलनी मे गए हुए जल के समान, अस्थिर हैं। किंतु खेद है, कि इस बात को जानते हुए भी, यह मूढ आत्मा, अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है ॥४८॥

जिनशुभपदभक्तिर्भावना जैनतत्वे,
विषयसुखविरक्तिर्मित्रता सत्त्ववर्गे ।

श्रुतिशमयमशक्तिर्मूकतान्यस्य दोषे,
मम भवतु सुबोधोयावदाप्नोमि मुक्तिम् ॥४६॥

भावार्थ—जब तक मैं मुक्ति को प्राप्त न कर लूँ, तब तक श्री जिनेश्वर भगवान् के कोमल चरणों के प्रति मेरी भक्ति बनी रहे। ज्ञान संयुक्त जैन धर्म के तत्वों में मेरी भावना बनी रहे। विषय-सुखों से विरक्ति और प्राणी मात्र के प्रति मित्रता के भाव बने रहे। मेरे हृदय में शम, यम तथा श्रुति का पूर्ण बल प्रकट हो। दूसरों के दोषों पर मेरी दृष्टि न पड़ने पावे। अर्थात् दूसरे व्यक्तियों के दोषों के सम्बन्ध में, मैं पूर्ण मौनावलम्बी बना रहूँ। और मेरी बुद्धि सदैव निर्मल बनी रहे ॥४६॥

सद्यः पातालमेति प्रविशति जलधिं गाहते देवगर्भं,
भुङ्क्तेभोगान्नराणाममरयुवतिभिः सङ्गम याचते च।
वाञ्छत्यैश्वर्यमार्यमरिसमितिहतेः कीर्तिकान्ता ततश्च,
धृत्वा त्वं जीव! चित्तं स्थिरमतिचपलं स्वस्य कृत्यं कुरुष्व।

भावार्थ—हे जीव! तू शीघ्र ही कभी पाताल में प्रवेश करता है, कभी समुद्र में जन्म धारण करता है, तो कभी देवत्व को प्राप्त कर लेता है। फिर कभी मनुष्य के भोगों को भोगता है, तो कभी देवाङ्गनाओं के साथ सगम करने की प्रार्थना करने लग जाता है। कभी सम्पत्ति की वाञ्छा करने लगता है, तो कभी शत्रुओं के सग्राम में मर कर भी कीर्ति रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेता है।

इसलिए हे जीव ! तू अपने इस अस्थिर चंचल चित्त को सुस्थिर कर के उसे कर्तव्य परायण बना ॥५०॥

धर्मे चित्तं निधेहि श्रुतकथितविधिं जीवभक्त्या विधेहि,
सम्यक्त्वान्तं पुनीहि व्यसनकुसुमितं कामवृक्षं लुनीहि ।
पापे बुद्धिं धुनीहि प्रशमयमदमान् शिथिल पिण्डि प्रसादं,
छिन्धि क्रोधं निभिन्धि प्रचुरमदगिरस्तेऽस्तिचेन्मुक्ति वाञ्छा।

भावार्थ—हे जीव ! अपने चित्त में स्थिरता को धारण कर के शास्त्र विहित-विधानों की भक्ति पूर्वक आराधना कर । और उस आराधना के द्वारा अपने चित्त और आत्मा को पवित्र बना डाल। कुव्यसन स्वरूप पुष्पों से विकसित कामदेव तथा कामिनी स्वरूपी विष-वृक्ष को काट डाल । पाप-मार्ग से अपनी बुद्धि को हटा ले । महा मदों को शान्त करके प्रमाद का चूर्ण कर डाल । क्रोध को नष्ट भ्रष्ट कर डाल । प्रचुर मद से भरे हुए वचनों को कभी उच्चारण न कर । इन सब नियमों का पालन करने पर ही तू मुक्ति को प्राप्त कर सकता है । अन्यथा नहीं ॥५१॥

ज्ञानं तेऽद्य प्रबोधोजिनवचनरुचिर्दर्शनं धूतदोषं,
चारित्रं पापमुक्तं त्रयमिदमुदितं मुक्तिहेतुं प्रधत्स्व ।
मुक्त्वा संसारहेतुतस्त्रितयमपरं मिथ्याबोधादबोधं,
रे रे जीवात्मवैरिन् ! प्रचुरशिवसुखे चेत्तवेच्छास्ति पूते

भावार्थ—हे परमोज्ज्वल आत्मा के शत्रु ! कर्म-पंक-दूषित

आत्मन् ! यदि तुझे प्रचुर सुखों से परिपूर्ण शिव सुख प्राप्त क
की तीव्र उत्कण्ठा है, तो जिन वाणी के प्रति अपनी प्रगाढ श्र
प्रकट करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और पाप रहित सम्य
चारित्र इन तीनों रत्नों को सम्यक् प्रकार से धारण कर ले। क्य
कि ये तीनों रत्न रत्नत्रय-धर्म, के नाम से प्रख्यात् हैं। और य
"रत्न-त्रय-धर्म" मुक्ति के लिए हेतुभूत है। और इनके विपरी
कुदर्शन, कुज्ञान और कुचारित्र जो हैं, वे संसार के हेतुभूत हैं
अत उन्हें शीघ्र ही छोड़ दे ॥५२॥

रे - पापिष्टातिदुष्ट ! व्यसनगतमते ! निन्द्यकर्मप्रसक्त !
न्यायान्यानभिज्ञ ! प्रतिहतकरुण ! व्यस्तसन्मार्गवुद्धे !
किं किं दुःखं न यातो विपयवशगतोयेनजीवोविपन्न,
त्व तेनैनौतिवर्त्मप्रसभमिहमदोजैनतत्वे निधेहि ॥५३॥

भावार्थ—हे पापिष्ट जीव ! तू अत्यन्त दुष्ट है। रात-दिन
कुव्यसनों के चक्कर मे पड कर तू महान घृणित निंद्यकर्म करता
रहता है। तू ने न्याय और अन्याय को तो कभी पहिचाना ही नहीं
है। करुणा रहित हो कर सन्मार्ग को ग्रहण करने वाले हे आत्मन !
तू ने विषयों के वशवर्ती होकर क्या क्या दुःख नहीं सहे ? अर्थात
सभी महान् से महान् भयानक दुःखों का तू शिकार हो चुका है।
इसलिए इनको सहन करता हुआ, अब तो तू पाप-पथ से विमुख
होकर शीघ्र ही जैन धर्म के तत्वों का मनन करने मे तत्पर हो

कर्मानिष्टं विधत्ते भवति परवशो लज्जते नो जनानां,
धर्माधर्मौ न वेत्ति त्यजति गुरुकुलं सेवते नीचलोकम् ।
भूत्वा प्राज्ञः कुलीनः प्रथितपृथुगुणो माननीयोबुधोऽपि-
तस्मात्त्वं कर्मवृन्दं झटिति मुनिपदं प्राप्यलोके निछिन्धि ।

भावार्थ—रे जीव ! तू अनिष्ट कृत्यों को करता हुआ भी सज्जनों की सभा मे लज्जित नहीं होता है। सद्गुरुओं को छोड कर धर्माधर्म की अनभिज्ञता के कारण तू नीच लोकों की सेवा मे ही सदैव तत्पर रहता है । अरे ! तुझे अपने इस दुष्कृत्यों के लिये जरा शर्म आनी चाहिये। प्राज्ञ, कुलीन, प्रसिद्ध महान् गुणो से विभूषित, माननीय विद्वान् हो कर भी, तू ऐसे अधम कृत्य कर रहा है। यह नितान्त अनुचित और अवाञ्छनीय है। अत अब तू इस असार ससार से अपना नेह-नाता तोड डाल। और मुनि वृत्ति को स्वीकृत कर के अपने समस्त घनघाती कर्मों को समूल नष्ट कर डाल। यों भव-बन्धनों से विमुक्त हो कर शीघ्र ही क्यों नहीं मोक्ष-धाम मे निवास कर लेता है ? ॥२४॥

या छेदभेददमनाङ्कनदाहदोहो-
वातातपान्नजलरोधवधादिखेदा ।
मायावशेन मनुजोजननिन्दनीया-
तिर्यग्गतिं व्रजति तामपि दुःखपूर्णाम् ॥२५॥

भावार्थ—यह जीव क्रोधादि कषायों के वशीभूत हो कर,

दुःखों से लबालब भरी हुई, महान् निन्दनीय-नरकादि, तीर्यंच गतियों को प्राप्त होता है। और वहाँ छेदन, भेदन, अङ्कन * और दाहन आदि महान् भयकर दुःखों को सहन करता है। तथा वायु, आतप, अन्न और जल के रोधन एवं वधादि के द्वारा पूर्ण खेदावस्था को प्राप्त होता रहता है ॥५५॥

यत्र प्रियाप्रियवियोगसमागमान्य-
प्रेष्यत्व धान्यधनबान्धवहीनताद्यैः ।
दुःख प्रयाति विविधं मनसाप्यसह्य-
तं मर्त्यग्राममधितिष्टति माययाङ्गी ॥५६॥

भावार्थ—माया के वश यह जीव, इष्ट वियोग, अनिष्ट-संयोग, धन धान्य और बान्धवादि के निधन को सहन न कर सकने के कारण, महान् दुःखपूर्ण-जीवन प्राप्त करता है ॥५६॥

क्षणेन भङ्गत्वमुपागतेषु, भवाब्धिपूरे जनमज्जकेषु ।
संसारभोगेष्वधुना ममेदं, विरक्तिभाव विधति चेतः ॥५७॥

भावार्थ—सांसारिक सुखोपभोगों की यह समस्त सामग्रियाँ, इस क्षण-स्थायी संसार समुद्र के प्रबल प्रवाह में डुबाने वाली है।

---

* लोहे का चिमटा, चाकू या और कोई ऐसी ही वस्तु को अग्नि में तप्त करके किसी भी व्यक्ति के शरीर पर गर्म गर्म चिपका देने की क्रिया को अंकन कहते हैं। इस क्रिया को ग्रामीण भाषा में 'डाम चढाना' भी कहते हैं।

इसलिये अब यह मेरा चित्त विरक्त भाव को धारण करता जा रहा है ॥५७॥

लोक की क्षणभङ्गुरता

न बान्धवा नो सुहृदा न वल्लभा,
न देहजा नो धनधान्यसञ्चयाः ।
तथाहिताः सन्ति शरीरिणां जने,
यथात्रयोगत्वमदूषितं हितम् ॥५८॥

भावार्थ—ससार के समस्त भय-भीरू प्राणियों के लिये यह 'आत्म-योग' महान् कल्याणप्रद और आत्म-हित कारक है। बन्धु-बाँधव, स्त्री, मित्र और पुत्र तथा सचित धन-धान्यादि कोई भी वस्तु इस 'आत्म योग' की समानता कभी किसी प्रकार से भी नहीं कर सकते हैं ॥५८॥

तनोति धर्मं विधुनोति पातकं,
ददाति सौख्यं विधुनोति बाधकम् ।
चिनोति मुक्तिं विनिहन्ति संसृतिं,
जनस्य योगत्वमनिन्दितं धृतम् ॥५९॥

भावार्थ—इस प्रकार धारण किया हुआ, यह अनिन्दित-योग धर्म को विस्तारित करता है। पाप-जनित दुखों को नाश करता है। सौख्य का देनेवाला है। और समस्त बाधाओं को हरण कर के मुक्ति-धाम मे पहुँचाने वाला है। तथा भव-भय-भजक है ॥५९॥

जिनेन्द्रचन्द्रामलभक्तिभाविना,
निरस्त मिथ्यात्व मलेन देहिना ।
विधार्यते येन विशुद्धभावना-,
मवाप्यते तेन विमुक्तिकामिनी ॥६०॥

भावार्थ—जो प्राणी मिथ्यात्व रूपी मैल को निराकरण कर के, श्री जिनेन्द्रदेव की भक्ति में लीन रहता है। उस प्राणी के हृदय में, विशुद्ध-भावना का आविर्भाव हो जाता है। तथा उस निर्मल भावना के प्रभाव से वह मुक्ति रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेता है ॥६०॥

दृष्ट्वा स्वीयसुतं विरागवनिता लुब्धं पिताऽवक् तदा ।
रे रे किं सुत ! वर्तते तव हृदि ब्रूहि प्रमादस्थित ?
मानुष्यं सफलं कुरुष्व रुचिरं भुङ्क्ष्वा गृहस्थाश्रम,
व्यापारेऽर्जय पद्मजा प्रणयतः प्रीणीहि त्वं मातरम् ॥६१॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी ने, अपने पुत्र श्री खूबचन्द जी को, वैराग्य रूपी वनिता पर इस प्रकार मोहित होते देख कर कहा, कि हे पुत्र ! तेरे हृदय में क्या है ? बता ! तू प्रमाद में मस्त हो कर यह क्या कह रहा है ? अरे, इस सुन्दर गृहस्थाश्रम का उपभोग कर के तू अपने मनुष्य जीवन को सफल कर। और व्यापार द्वारा लक्ष्मी का संचय कर। तथा नम्र भाव से तू अपनी माता को सन्तुष्ट एवं तृप्त कर ॥६१॥

नित्यं पर्यटनं गृहस्थसदनाऽधीनोऽशनं जीवनं-
काठिन्यं भवतीह ब्रह्मचरणं स्वल्पा न शान्तिस्थितिः ।
वैराग्ये न सुखं मनोऽब्धिलहरी भङ्गं च नो विद्यते-
गार्हस्थ्याश्रमपोपणेन तनय ! त्वं साधय स्वश्रियम् ॥६२॥

भावार्थ—वैराग्य में सुख नहीं है । क्योंकि साधुओं को सदैव इधर से उधर घूमना पड़ता है । उनका भोजन गृहस्थों के आधीन है । अर्थात् घर-घर भिक्षा मागनी पड़ती है । और पूर्ण रूपेण ब्रह्मचर्यव्रत को धारण किये हुए रहना पड़ता है । अत उस में शातिपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती । क्योंकि मन रूपी समुद्र में विषय-सुख की-कामना रूपी तरंगे उठ कर फिर वहीं विलीन हो जाती हैं । इसलिए हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम में रह कर ही तू लक्ष्मी सचय करते हुए अपने जीवन को व्यतीत कर ॥६२॥

कालश्चेत्करुणापरः कलियुगं यद्यत्रधर्मप्रियं,
निस्त्रिंशोयदि पेशलोनिपधरः सन्तोपदायी भवेत् ।
अग्निश्चेदतिशीतलः खलजनः सर्वोपकारी स चे-
द्गार्हस्थ्ये नहि साध्यते शृणुपितर्मुक्तिकदापि भवे ॥६३

भावार्थ—श्री खूबचन्द्रजी अपने पिता जी से कहने लगे, कि हे पिता जी ! यदि यम, दयालु हो जाये । कलियुग, धर्म-प्रिय हो जाये । तलवार अपनी तीक्ष्णता को छोड़ कर कोमल हो जाय । साँप, विष के बदले अमृत उगलने लग जाय । अग्नि अत्यत शीतल

आदर्श चरितम्

प्रिय व्याख्याता, श्रामन्मुनि,

श्री हीरालाल जी महाराज



(चित्र केवल परिचय के लिए है)

जन्म सं० १९६४, दीक्षा (रत्ना पुत्र माघ) सं० १९७९

नित्यं पर्यटनं गृहस्थसदनाऽधीनाशनं जीवनं-
काठिन्यं भवतीह ब्रह्मचरणं स्वल्पा न शान्तिस्थितिः ।
वैराग्ये न सुखं मनोऽब्धिलहरी भङ्गं च नो विधते-
गार्हस्थ्याश्रमपोषणेन तनय ! त्वं साधय स्वश्रियम् ॥६२॥

भावार्थ—वैराग्य मे सुख नहीं है । क्योंकि साधुओं को सदैव इधर से उधर घूमना पड़ता है । उनका भोजन गृहस्थों के आधीन है । अर्थात् घर-घर भिक्षा मागनी पड़ती है । और पूर्ण रूपेण ब्रह्मचर्यव्रत को धारण किये हुए रहना पड़ता है । अतः उस मे शांतिपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती । क्योंकि मन रूपी समुद्र मे विषय सुख की कामना रूपी तरंगे उठ कर फिर वहीं विलीन हो जाती हैं । इसलिए हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम मे रह कर ही तू लक्ष्मी संचय करते हुए अपने जीवन को व्यतीत कर ॥६२॥

कालश्चेत्करुणापरः कलियुग यद्यत्रधर्मप्रिय,
निस्त्रिंशोयदि पशलोविषधरः सन्तोपदायी भवेत् ।
अग्निश्चेदतिशीतलः खलजनः सर्वोपकारी स चे-
द्गार्हस्थ्ये नहि साध्यते श्रृणुपितर्मुक्तिकदापि भवे ॥६३

भावार्थ—श्री खूबचन्द्रजी अपने पिता जी से कहने लगे, कि हे पिता जी । यदि यम, दयालु हो जाय । कलियुग, धर्म-प्रिय हो जाय । तलवार अपनी तीक्ष्णता को छोड़ कर कोमल हो जाय । सांप, विष के बदले अमृत उगलने लग जाय । अग्नि अत्यंत शीतल

आदर्श चरितम्

प्रिय व्याख्याता, श्रम

श्री हीरालाल जी महाराज



(चित्र केवल परिचय के लिये है)

जन्म सं० १९६४, दीक्षा (पिता पुत्र साथ) सं० १९७१

वियोग और सम्पत्ति-विपत्ति प्राप्त होती ही रहती है। अतएव बेटा! उसके लिए विचार करने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि यह कोई नवीन बात तो है ही नहीं, कि जिसके लिए आश्चर्य प्रकट किया जाय ॥६५॥

विपत्तिसहिताः श्रियोऽसुखयुतं सुखं जन्मिना,
वियोगपरिदूषिता जगति सद्गुरुसेवना।
रजोरगबिल वपुर्मरणनिन्दितदेहिना,
तदप्ययमनारतं हतमतिर्भवेरज्यते ॥६६॥

भावार्थ—अपने पिता श्री टेकचन्द जी के उपरोक्त कथन को सुन कर श्री खूबचन्दजी कहने लगे, कि पूज्य पिता जी! लक्ष्मी विपत्ति सहित है। सुख, दुःख से परिपूर्ण है। सद्गुरु-सेवा वियोग से दूषित है। और यह शरीर भी रज रूपी साँप के बिल की भाँति दूषित है। किंतु खेद है, कि इतना होते हुए भी यह प्राणी इस ससार में अनुरक्त रहता है ॥६६॥

ख्रीतः सर्वज्ञनाथः सुरनतचरणोजायतेऽबाधबोध-
स्तस्मात्तीर्थं श्रुताख्यं जनहितकथकं मोक्षमार्गावबोधम्।
तस्मात्तस्माद्विनाशोभयदुरिततते: सौख्यमस्माद्विबाधं,
बुद्ध्वैवं स्त्रीं सुरम्या भवसुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति

भावार्थ—तत्पश्चात पिता जी ने पुत्र को फिर समझाया, कि हे पुत्र! देखो, देवताओं से भी पूज्य, पूर्णज्ञान-सम्पन्न, सर्वज्ञ देव

भी स्त्री से ही उत्पन्न होते हैं। जिन के द्वारा मनुष्य एव प्राणी मात्र के हितकारक एवं मोक्ष मार्ग प्रदर्शक शास्त्रों का, एव साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चारो तीर्थों का उद्घाटन होता है । और उन धर्म-शास्त्रों तथा तीर्थों से, हमे हमारे सम्पूर्ण पाप तापों का विनाश होकर बाधा रहित सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये हे पुत्र ! स्त्री को सच्चे सुख की देनेवाली और अच्छी समझ कर ही सज्जन पुरुष स्वीकार करते हैं ॥६७॥

सत्यं मन्त्री विपत्तौ भवति रतिविधौ दासिका या सुदक्षा,
लज्जालुः साविगीता गुरुजनविनता गेहनी गेहकृत्ये ।
भक्त्या पत्यौ सखीया स्वजनपरिजने धर्मकर्मैकनिष्ठा,
गार्हस्थ्ये साल्पपुण्यैः सकलगुणनिधिः प्राप्यते स्त्री न यमर्त्यैः

भावार्थ—हे पुत्र ! स्त्री आपत्ति के समय मन्त्री का काम देती है। प्रेमानुराग मे चतुर दासी का-सा कार्य करती है। लज्जा और शील सयुक्त, अनिन्दित गुरुजनों की विनय भक्ति करनेवाली, गृहकार्यों मे दक्ष, पति भक्ति परायणा, स्वधर्म-कर्म मे चतुर तथा स्वजन परिजनों से अनुराग रखनेवाली, सम्पूर्ण गुणों की खान स्त्री, मनुष्यों को स्वल्प पुण्यों से प्राप्त नहीं होती है। किन्तु महान् पुण्योदय से ही ऐसी सर्वगुण-सम्पन्न स्त्री प्राप्त होने का सौभाग्य मिलता है ॥६८॥

लब्धा या सुप्रबन्धा परमसुखरसा कोकिलालापजल्पा,

पालन करते हुए भी मनुष्य मुक्ति-धाम को प्राप्त कर सकता है। ऐसे कल्याणकारी गृहस्थाश्रम को त्याग कर हे पुत्र! तू वैराग्य वृत्ति में क्यों अपने चित्त को लगा रहा है? संसार की सत्ता के कारण तू कुछ दिनों तक अवश्य ही गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए लक्ष्मी का संचय कर ॥७७॥

न संसारे किञ्चित्स्थिरमिह निजं वास्ति सकलम्,
किमुचार्यं रत्नत्रितयमनघं मुक्तिजनकम्।
अहो मोहार्तानां तदपि विरतिर्नास्ति भविनां,
ततोमोक्षोपायाद्विमुखमनसां नास्ति कुशलम् ॥७८॥

भावार्थ—तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी ने अपने पूज्य पिता जी से कहा कि पिताजी! इस अस्थिर संसार में न तो कोई स्थिर ही है। और न कुछ अपना कोई निजी ही है। केवल निष्पाप रत्न-त्रय-धर्म ही आत्म-हितकारक और निजी है। और यही मुक्ति का देने वाला है। तो भी आप इस अस्थिर संसार से विरक्त नहीं होते हैं। इस प्रकार मोक्षोपाय से विमुख रहने के कारण ही आप को सुख प्राप्त नहीं होता है। और सदैव हाय! हाय!! रूपी व्याकुलता ही बनी रहती है ॥७८॥

स यातोयात्येष स्फुटमयमहो पश्यति मृतिं,
परेषां यत्रैवं गणयति जनोनित्यमबुधः।
महामोहाज्जातु सुतधनकलत्रादिविभवो,

न मृत्युं स्वासन्नं व्यपगतमतिः पश्यति पुनः ॥७६॥

भावार्थ—इस संसार के प्राणी शरीर, धन, स्त्री आदि के मोह में [illegible] पर प्रति दिन दूसरों की तरफ देखते हुए इस बात की गणना [illegible] रहते हैं, कि वह मर गया, वह मर रहा है, एवं वह मरेगा, [illegible] देखते तथा जानते हुए भी वे मन्द बुद्धि बनकर [illegible] विचार नहीं करते हैं, कि हमारे सिर पर भी मृत्यु मँडरा [illegible] है और हम भी एक न एक दिन इस कराल काल के [illegible] में [illegible] जायेंगे ॥७६॥

[illegible]जलचरं जीवितमिदं,
[illegible] स्त्रीणां भुजगकुटिलं कामकुसुमम् ।
[illegible]कायः [illegible] यौवनवनं,
[illegible] ज्ञात्वा सन्तः [illegible] ॥८०॥

[illegible]

[illegible]

भावार्थ—यह संसार अनित्य है। यहां पर कोई किसी का रक्षक नहीं है। वृद्धावस्था मृत्यु रोग आदि से व्याप्त, मिथ्या पाशों से बद्ध है। और अहंकार से व्याप्त है। विमल चित्त वाले धार्मिक पुरुष ऐसा विचार कर, इस संसार से विरक्त हो जाते हैं। और जिनदेव द्वारा प्रतिपादित तपस्यादि अमूल्य धार्मिक कृत्यों में प्रवृत्त होते हैं॥८१॥

गलत्यायुर्देहे व्रजति निलयं रूपमखिलं,
जरा प्रत्यासन्नी भवति लभते व्याधिसदयम्।
कुटुम्बस्नेहार्तः प्रतिहतमतिर्मोहकलितो,
जनो जन्मोच्छित्यै तदपि कुरुते न प्रयतनम्॥८२॥

भावार्थ—मनुष्य की आयु दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। उत्तरोत्तर सम्पूर्ण सुन्दर रूप-यौवन विलुप्त होता जा रहा है। जब वृद्धावस्था समीप आती है, तो फिर आधि-व्याधियों का उदय होता है। परन्तु फिर भी यह कुटुम्ब के प्रेम में फँसा हुआ, मोह ग्रसित, बुद्धि हीन मनुष्य, जन्म-मृत्यु रूपी व्याधि के विनाश के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता है॥८२॥

भवन्त्येता लक्ष्म्यः कतिपयदिनान्येव सुखदा-
स्तरुण्यस्तारुण्ये विदधति मनः प्रीतिमतुलाम्।
तडिल्लोल्लाभोगा वपुरपि चलं व्याधिकलितं,
बुधाः संचिन्त्येति प्रगुणमनसो ब्रह्मणि रताः॥८३॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी तो केवल यहीं कुछ दिनों के लिए सुख देने वाली होती है। यह तरुणी भी केवल इस युवावस्था में हीं मन-हरण करने वाली बनकर अत्यन्त प्रीति की पात्रा होती है। सासारिक सुख बिजली के समान चचल है। और व्याधियों से भरा हुआ यह शरीर भी चलायमान है। ऐसा विचार कर सज्जन पुरुष सदैव ब्रह्म अर्थात् आत्म-सुख मे सलग्न हो जाते हैं ॥८३॥

न कान्ता कान्ताते विरहशिखिनो दीर्घनयना,
न कान्ता भूपश्री जलधिलहरीवत्तरलिता।
न कान्तं ग्रस्तातं भवति च जरायौवनमतः,
श्रयन्ते ते सन्तः स्थिरसुखमयीं मुक्तिवनिताम् ॥८४॥

भावार्थ—दीर्घ नेत्र वाली स्त्री विरह के प्राप्त होने पर अग्नि के समान हो जाती है। और कष्ट से प्राप्त की गई राज्य लक्ष्मी भी समुद्र की तरगों के समान चचल है। यौवनावस्था का शारीरिक सौंदर्य भी वृद्धावस्था के आगमन के कारण नष्ट भ्रष्ट और कुरूप हो जाता है। इसलिये सत्पुरुष स्थायी सुखों से परिपूर्ण मुक्ति रूपी स्त्री को ही अपने आधीन रखते हैं ॥८४॥

वस्त्राण्यादि परेण यत्र मिलनं भूमौ च शय्या तथा,
स्कंधे पुस्तकपात्रभारकरणं पौषादिकष्टं तथा।
शीतग्रीष्मयुतेपि पादचलनं कंटादिपूर्णे पथि,
तारुण्ये तपसे दर्शेन भवतारकष्ट कथ सह्यते ॥८५॥

भावार्थ—तब उनके पिता कहने लगे, कि जिस मुनि वृत्ति में वस्त्र भी दूसरों से उपलब्ध होते हैं। और पृथ्वी पर ही सोना पड़ता है। कन्धे पर पुस्तक एवं पात्रादि का भार लाद कर शीत ग्रीष्मादि के असह्य कष्टों को सहन करते हुए, कंटकाकीर्ण मार्ग में पैदल चलना पड़ता है। यों मुनि-अवस्था के तप और त्याग के द्वारा अपने लिए तू क्यों कष्टों को आमंत्रित कर रहा है?॥८५॥

क्रोधाद्युग्रचतुष्कषायचरणोऽन्यामोहहस्तः पितः,
रागद्वेषनिशातदीर्घदशनोदुर्वारमारोद्धुरः ।
सज्ज्ञानाङ्कुशकौशलेन समहा मिथ्यात्वदुष्टःद्विपः,
नीतो येन वशंवशीकृतमिदं तेनैव विश्वत्रयम् ॥८६॥

भावार्थ—तब फिर पुत्र ने पिता जी से कहा, कि हे पिता जी! क्रोधादि चार कषाय रूपी चार पैर, मोह रूपी सूँड एवं राग द्वेष रूपी दो बड़े लम्बे-लम्बे दाँत वाला तथा प्रबल काम-विकार रूपी मदसे उन्मत्त ममता रूपी गन्ध हस्ति को, जिस पुरुष ने अपने सद् ज्ञान रूपी अंकुश से वश में कर लिया है। उसने मानो तीनों लोकों को अपने वश में कर लिये हैं॥८६॥

योगे पीनपयोधराश्रिततनोर्विच्छेदने बिभ्यताम्,
मानस्यावसरे चटूक्तिविधुरं दीनं मुखं बिभ्रताम् ।
विश्लेषे स्मरवह्निना तु समयं दन्दह्यमानात्मना,
रेरे सर्वदिशासु दुःखगहनं धिक्कामिना जीवनम् ॥८७॥

भावार्थ—सुन्दर रूप वाली स्त्रियों के संयोग से मोहित, ोग से भयभीत, रूठने से चापलूस और वियोगावस्था में ता पूर्वक कामाग्नि से निरंतर दग्ध रहने वाले लम्पटी पुरुषों जीवन समस्त दिशाओं में सर्वथा दुःख से परिपूर्ण और कार का पात्र होता है ॥ ८७ ॥

ृणन्ति प्रपञ्चनेन, योषितो गद्गदा गिरम् ।
श मनन्ति प्रेमोक्तिं, कामग्रहिलचेतसः ॥८८॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों के चित्त काम से मलिन हो चुके हैं। ी मनुष्य विस्तार पूर्वक कही गई स्त्रियों की प्रेमपूर्ण गद् गद् ी को ग्रहण करते हैं। किंतु बुद्धिमान् मनुष्य कदापि ऐसा नहीं ते हैं ॥८८॥

ा पतङ्गा ज्वलिते प्रदीपे, विवृद्धवेगाः सुतराम्प्रमत्ताः ।
ुस्सहं दारुणदुर्विपाकं, अचिन्तयन्तः प्रपतन्ति रागात् ॥

भावार्थ—जिस प्रकार रागाधीन पतंग, जलते हुए दीपक में ने को जला देता है। उसी प्रकार मोह से उन्मत्त प्राणी भी ्ह दारुण राग के परिणाम को न विचारते हुए अपने को रूपी अग्नि में भस्मीभूत कर डालते हैं ॥८९॥

ा मनुष्या अपि लोलुपत्वा-द्विवेकहीना मदनाभिभूताः।
न्तदुःखार्णवतुल्यमानं, विशन्ति जालं विषयाभिधानम्

भावार्थ—और वे अज्ञानी जीव लोलुपता के वशीभूत हो कर

विवेक एवं विचार रहित काम विकार से ग्रसित अनत दु:खों के समुद्र विषय-जाल में फँस कर घोर दु:ख को प्राप्त होते हैं ॥९०॥

योगरससिंहगर्जितघोररवभयाभिभूतहृदयास्ते ।
षाड्रिपवोहरिणसमा भ्रान्तादिशि पलायिता गहने ॥९१॥

भावार्थ—योग रूपी सिह की भयकर गर्जना को सुन कर काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद तथा मत्सर स्वरूप यह छहों मृग भयभीत हो जाते हैं। और ससार रूपी वन मे भागने लग जाते हैं ॥९१॥

प्रायात्पितृगृहेसु योगनिपुणः श्रीजावरास्थानक,
सङ्घाज्ञां परिधीत्यशुद्धमनसां कर्तु स्वयोगं दृढम् ।
मातृभ्रातृनिजाङ्गनासुभगिनीवापादिसम्बन्धिनो,
नेतु तं च गृहस्थधर्ममुचितं प्राहुर्महायत्नतः ॥९२॥

भावार्थ—जावरा सघ की आज्ञानुकूल हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द जी ने साधु-वृत्ति ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अपने जन्म स्थान निम्बाहेडा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुचते ही उन्हें उनके माता पिता, भाई-बहिन और स्त्री आदि कुटुम्बी जन ग्रहस्थाश्रम पालन करने के लिए समझाने लगे ॥९२॥

पति पत्नि-सम्वाद

पत्नीसाकरबा समीक्ष्य रमणं योगाधिरूढं तदा,
नेत्राश्रूदकतः प्रपूज्यचरणं प्रावीवदत्स्नेहतः ।

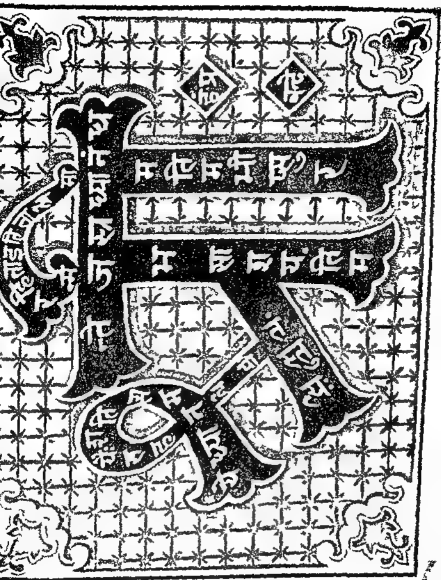
नाथ ! त्वद्विरहोऽधुना हिमरुचिश्चण्डांशुलत्तायते,
हेमन्तस्य हिमानलोऽपि दहनज्वालावलीलायते ॥६३॥

भावार्थ—तदनतर सौभाग्यवती श्री साकरदेवी ने अपने पति श्री खूबचन्द जी को इस प्रकार वैराग्यारूढ देख कर अपने अश्रुपात से चरण धोते हुए स्नेह पूर्वक कहा, कि हे नाथ ! इस समय तुम्हारे विरह से चन्द्रमा शीतल होते हुए भी सूर्य के समान उष्ण सतापकारी मालूम होता है। और हेम ऋतु की शीतल पवन भी अग्नि के समान शरीर को दग्ध करती है॥ ६३ ॥

न स्नेहः कुसुमे सुखं न भवने प्रेमा न पङ्केरुहे,
न प्रीतिः पवने रतिर्न भुवने यत्नोन वा जीवने ।
चित्त त्वद्विरहेण हन्त हरिणी रूपायते सर्वदा,
मेहम्योऽपि यमायते निरचय च्छार्दूलनिक्रीडितम् ॥६४॥

भावार्थ—इस समय मुझ को फूल के प्रति स्नेह, ससार मे सुख, कमल मे प्रेम, पवन मे प्रीति, रस मे राग, और जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करना भी, अच्छा मालूम नहीं होता है। आपके विरह से यह चित्त हिरणी के समान आचरण कर रहा है। ओर यह घर सिंह के रूप को धारण करता हुआ यम के समान आचरण कर रहा है॥६४॥

शश्वन्माया करोति स्थिरमति न मनो मन्यते नोपकार
या वाक्य वक्तयमत्य मलिनयति कुलं कीर्तिरल्लीं लुनाति



छायाचण्डालराया निरुचिचपला खड्गधारेवतीक्ष्णा,
बुद्धिर्वा दुष्टकस्य प्रतिहतकरुणा व्याधिवन्नित्यदुःखा ।
वक्रा नागीव नीतिः कुनृपगतिरिवानयवृत्त्यप्रचारा,
चित्राचित्रेन्द्रचापं भयचकितबुधैः सेव्यते स्त्री कथं सा ॥

भावार्थ—तब हमारे चरित्रनायक श्री सूरचन्द जी कहने लगे कि जो स्त्री चाण्डाल की छाया के समान घृणास्पद, बिजली के समान चपल, तलवार की धार के समान तीक्ष्ण व्याघ्र की बुद्धि के समान करुणा विहीन, व्याधि के समान नित्य ही दुखों से परिपूर्ण विकराल साँप के समान कुटिल दुष्ट नृपति के समान नीति की प्रचारिका और इन्द्र धनुष के समान चित्र विचित्र वर्ण वाली होती है। ऐसी स्त्री संसार से भयभीत होने वाले पुरुषों द्वारा कैसे ग्रहण की जा सकती है? अर्थात् कदापि नहीं ॥६७॥

चन्द्रज्योत्स्नासमान मनुजवनितयोर्युग्मका लोकमध्ये,
दृश्यन्ते स्फारहाराः सुखवरदकराः सर्वदा सर्वसारा ।
संसाराऽनल्पवारा मदनभयहराश्चिद्धनेकान्तताग-
स्तारा.शृङ्गारधारानिगमनिधिभरास्त्रस्तधम्मिल्लभरा. ॥

भावार्थ—तब उनकी स्त्री ने कहा-जिस प्रकार संसार में चन्द्रमा और चाँदनी का सदा से जोड़ा देखा जाता है। उसी प्रकार स्त्री और पुरुष की यह परम सुन्दर जोड़ी भी उत्तम सुखों को सम्पादन करनेवाली, सुन्दराकार वाली, संसार के सब प्रकार के भयों को

निवारण करने वाली, चिद्धन के एक अवतार के समान चचल शृ गार की धारा स्वरूप, शास्त्र के तत्वों से भरपूर और ढीले केश-पाश की रचना वाली देखी जाती है ॥६८॥

न दृष्टं स्त्रीभ्योऽन्यत्क्वचिदपि महच्चास्ति ललितं,
सदादृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननम् ।
तदर्थे धर्मार्थं त्रिभवनरसाख्यानि च ततो,
गृहे लक्ष्मीर्मान्याः सततमबलामाननिभरैः ॥६६॥

भावार्थ—हे हृदयेश । ससार में स्त्री रत्न के समान सुख देने वाला और कोई अन्य रत्न न तो सुना, न देखा और न किसी ने सम्पादन ही किया है । इस स्त्री के लिए ही सब धर्म और सम्पत्ति का उपार्जन किया जाता है। जिस घर मे स्त्रियों का आदर होता है, उस घर मे लक्ष्मी निवास करती है । और सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं ॥६६॥

दयादान श्रद्धा परधनपरस्त्रीविमुखता,
क्षमासत्यं जैनप्रमितगुरुसेवाशुभकरा ।
अनौद्धत्यं तृष्णा नियमनमनङ्गाविकलता,
जनाना गार्हस्थ्यं भवति शुभमेयं सुखकरम् ॥१००॥

भावार्थ—दया, दान और श्रद्धा में तत्पर रहने वाला, धन और पर स्त्री से विमुख रहने वाला, क्षमा, सत्य, और जैन धर्म के प्रति प्रगाढ रुचि रखनेवाला, उद्दण्डता रहित, तृष्णा को रोकते

हुए गुरु की सेवा करनेवाले और काम सेवन के लिए विकल न रहने वाले व्यक्ति का गार्हस्थ्य जीवन ही अत्यन्त सुख का देने वाला है ॥१००॥

भवन्तः सद्योगप्रणिहितधियामत्रगुरवो,
निदग्धालापानामहमपि पदाब्जासशरणा ।
यथाप्येतत्स्वामिन्नहि परहितात्पुण्यमधिकम्,
तनास्मिन्ससारे कुवलयदृशः सौख्यमधिकम् ॥१०१॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! यद्यपि आप आत्मध्यान में लीन सद्गुरुओं के चरण कमल की सेवा करते हुए उनके दिव्य उपदेश की प्राप्ति द्वारा बड़े भारी पुण्य का सचय कर रहे हो। और इस ससार में परोपकार से बढ़कर अन्य कोई पुण्य नहीं है। यह बात बिलकुल सत्य है। किन्तु ससार म स्त्रियों से जो सुख प्राप्त होता है, उससे अधिक सुख भी कोई नहीं हो सकता है ॥१०१॥

त्वगस्थिरुधिरामिषैः प्रचुरगूथमूत्रादिकैः,
भृता जगति वेदिता सकलदोषसीमा स्त्रियम् ।
अनङ्गशरजर्जरीकृतकलेवरे कातरो-
नरो जडमतिर्मुहुःप्रियतमेति ममापते ॥१०२॥

भावार्थ—तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी ने कहा, कि छि ! छि ! चमड़ी, हड्डी, रुधिर, मास, विष्ठा और मूत्रादि से भरी हुई सकल दोष की खान स्त्री को काम स्वरूप बाण से

जर्जरित शरीर वाला, कायर, मूर्ख और कामी पुरुष ही बार-बार प्रियतमा शब्द से सम्बोधित करता है ॥१०२॥

नारीणां सुकलेवरं विरचितं सत्यं त्वया भाषितम्-
त्वग्मांसक्षतजास्थिवीर्यविकृतिं प्रायेण निर्धारितम् ।
लालामूत्रपुरीषपोषितवपा श्लेष्मादिभिर्भोपते !
एवं पूरुषदेहरम्यरचना तद्वस्तुभिः पूरिता ॥१०३॥

भावार्थ— तब उनकी स्त्री ने कहा, कि हे स्वामिन् ! स्त्रियों का शरीर चमड़ी मांस, रक्त हड्डी आदि से व्याप्त है । यह आपने बिलकुल ठीक कहा है । परन्तु रम्य पुरुषों का शरीर भी तो इन्हीं वस्तुओं से भरा हुआ है ॥१०३॥

अनेकमलसंभवे कृमिकुलैः सदा संकुले,
विचित्रबहुवेदने बुद्धविनिन्दिते दुःसहे ।
अमन्नयमनारतं व्यसनसंकटे देहवान्,
पुरार्जितवशोभवे भवति भाविनिगर्भके ॥१०४॥
शरीरमसुखावहं विविधदोषवर्चोगृहम्,
सशुक्ररुधिरोद्भवं भवभृता भवे भ्राम्यते ।
अगृह्य भवमंसतेऽविदधता निमित्तं विधम्,
सरागमनसासुखं प्रचुरमिच्छता तत्कृते ॥१०५॥
किमस्य सुखमादितो भवति देहिनो गर्भके,
किमङ्ग ? मलभक्षणप्रभृतिदूषिते शैशवे ।

किमङ्ग जरूतानुखच्यमनपीडिते यौवने,
किमङ्ग गुणमर्दनवमजगहते नार्धिके ॥१०६॥
किमत्र निरसे सुख दयितकामिनी सेवने,
किमन्यजनमङ्गमे द्रविणमक्षयनश्वरे ।
किमस्ति भुवि भगुरे तनयदर्शने वा भवे,
यतोऽत्र गतचेतसा तनुमता रतिर्बध्यते ॥१०७॥
इद स्वजनदेहज तनयमातृभार्यामयम्,
विचित्रमिह केन चिद्रचितमिन्द्रजाल तनु ।
क कस्य कथमत्रको भवति तत्वतोदेहिनः,
स्वकर्मवशवर्तिनस्त्रिभुवने निजो वा परः ॥१०८॥
हृषीकविषय सुख किमिह यन्न भुक्त भवे,
किमिच्छति नरः पर सुखमपूर्वभूत तनुः ।
कुतूहलमपूर्वज भवति नाङ्गिनोऽस्यास्ति चेत्,
समैकसुखमङ्ग्रहे किमपि नो विषत्ते मनः ॥१०९॥
वयोन शमयानतोभवति कोपवान् मस्तो,
विवेकविकल' शिशुर्विरहकातरो वा युवा ।
जरार्दिततनुस्तदा विगतसर्वचेष्टोजरी,
दधाति नटवन्नर. प्रचुरवपरुप वपुः ॥११०॥

भावार्थ—इस प्रकार रजा का उत्तर सुन कर उन्होंने उसे
ई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वे मौन रहे। अब उनके हृदय में

वैराग्य के पूर्ण भाव जागृत हो गये। वे ससार की असारता की तरफ दृष्टिपात करते हुए तनिक विचार कर कहने लगे, कि पूर्वोपार्जित कर्मों के वश प्राणी ससार मे भ्रमण करता हुआ अनेक प्रकार के मल से परिपूर्ण, कृमि-कुल से व्याप्त, नाना भाँति की व्याधियों के मन्दिर, व्यसन-ग्रसित, स्त्री के गर्भ में निवास करता है। और अनेक दुःखों को प्राप्त करता है ॥ १०४ ॥ सासारिक प्राणी सरागी अर्थात् मोह के वशीभूत होकर, ससार मे भ्रमण करता हुआ, भव मर्तात के कारण दुष्कर्मों का उपार्जन करता है। और प्रचुर सुख की इच्छा करता हुआ, दुखों से पूर्ण अनेक दोषों के भवन शरीर को धारण करके ससार मे भ्रमण करता फिरता है। विचारने की बात है, कि प्रारम्भ मे ही माता के गर्भ मे इसको क्या सुख मिला ? बाल्यावस्था मे गर्भ मे केवल अपवित्र मलादि भक्षण किया। और काम व्यसन पीडित युवावस्था मे इसे क्या हर्ष प्राप्त हुआ ? फिर इसी प्रकार अङ्गो को शिथिल करने वाली वृद्धावस्था मे कष्ट के सिवाय और क्या सुख मिला ? ॥१०५-१०६॥ इस रस हीन ससार मे, स्त्री भोग विलास मे, अन्य-जन के सगम में, क्षण स्थायी धन के सचय एवं विनाश मे, और विनाशशील पुत्र पोत्रादिक सतति के दर्शन मे, ऐसा कौन सा सुख है? कि जिसके कारण मूर्ख व्यक्ति माया-जाल मे फँस कर बँध जाता है। यह स्व-जन, परिजन, पुत्र, माता और स्त्री मय विचित्र इन्द्रजाल ससार मे न जाने किसने बना दिया है! वास्तव

मे यदि तथ्य पूर्वक विचारा जाय, तो विदित होगा, कि इस ससार में कोई किसी का नही है। अकेला जीव ही कर्म वश भ्रमण करता है ॥१०७-१०८॥ इस ससार में आत्मा के लिए ऐसा कौन सा इन्द्रिय विषयक सुख है, जो कि अभी तक इसके द्वारा नहीं भोगा गया है? ऐसा कौन सा सुख है, जो पहले, नही भोगा गया? और जिसके लिए यह लालायित रहा करता है। मुझे यह बडा भारी कौतुक नजर आता है, कि इस प्राणी का मन सदा सर्वदा समान रहने वाले मुक्ति सुख मे क्यों नही लगता है? ॥१०९॥ यह प्राणी नट के समान अनेक रूपों को धारण करता है। कभी शातचित्त हो जाता है, तो कभी महा क्रोधी बन जाता है। कभी विचार शून्य बालक हो जाता है,तो कभी विरहसे पीडित युवावस्था को धारण कर लेता है। और कभी वृद्धावस्था से दु खित हो जाता है। श्री खूबचन्द्र जी के इस विचार को सुन कर उनकी स्त्री श्री साकरदेवी ने कहा, कि स्त्री, सौन्दर्य की नदी युवावस्था के हर्षांकुर का स्थान है। अत स्त्री पुरुषों से त्याज्य होना कठिन है। ॥११०॥ इसके उत्तर मे हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी ने निम्न पद्याङ्कित, भाव-गम्भीर उत्तर दिया।

यद्येतास्तरले क्षणा युवतयो न स्युर्गलद्यौवनाः,
मूर्तिर्वा यदि भूभृता भवति नो सौदामिनी सन्निभाः।
वातोद्धूततरङ्गचञ्चलमिदं नो चेद्धवेज्जीवितम्,
कोनामेह तदेव सौख्यविमुखः कुर्याज्जिनोक्त वच. ॥१॥

यावत्ता प्रियभाषिणी स्मितमुखी भर्तृ प्रमोदप्रदा,
यावन्नो ग्रसते करालवदना क्रूरा जरा राक्षसी।
सौभाग्यानुगुणं सदा गतभयं पीयूषपूर्णं परं,
कर्तव्यं जिनदेवनासमुदित मोक्षाय पूर्णं तपः ॥११२॥
मृत्युव्याघ्रभयङ्कराननगतं भीतं जरा व्याघ्रत-
स्तीव्रव्याधिदुरन्तदुःखतरुमत्संसारकान्तारगम्।
देहं मे शृणु सुन्दरि ! व्यसनज पातुं नितान्तातुरम्,
प्रेम्णाह वरितास्मि सा गुणरणं ममारजन्मार्तिहम् ॥११३॥

भावार्थ--यदि चंचल नेत्र वाली स्त्रियाँ वृद्धा न हों राजाओं की सम्पत्ति भी बिजली के समान क्षणभंगुर न हो, तथा वायु की प्रबल लहर के समान यह जीवन चञ्चल न हो, तो फिर किसी भी प्राणी के लिए इन सांसारिक सुखों से विमुख हो कर जिनदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के पालन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। जब तक भयंकर मुखवाली क्रूर वृद्धावस्था रूपी राक्षसी मनुष्य को ग्रसित नहीं करती, तब तक श्रेष्ठ पुरुषों का कर्तव्य है, कि वे जिनेंद्र भगवान द्वारा प्रतिपादित, पुण्योदय के सूचक, भव भय संहारक, पियूष-धारा के समान सरस सुखप्रद तप त्याग विधान की आराधना द्वारा मोक्ष धाम को प्राप्त करें।१११-११२॥ हे सुन्दरी ! तीव्र व्याधि और दुःख रूपी वृक्षों से आच्छादित इस संसार रूपी वन में भटकता हुआ यह मेरा शरीर वृद्धावस्था रूपी व्याघ्र से भयभीत हो रहा है। और मृत्यु रूपी सिंह के

गुण का धाम बनने वाला है। अतः इस व्याकुलता से सुरक्षित रहने के लिए मैंने ऐसे साधुओं की शरण ग्रहण की है, कि जो प्रेम पूर्वक सांसारिक जन्म मृत्यु की पीड़ा को नष्ट करने वाले हैं ॥११३॥

लक्ष्मीं लावण्ययुता पुरुषो हृष्यति यथा मुदा दृष्ट्वा।
एवं हृदि निरमन्त ध्यात्वा जिनमिह भवेद्बुधो मुदितः

भावार्थ—जिस प्रकार लावण्यवती स्त्री को देख कर तरुण पुरुष प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अपने शुद्ध हृदय द्वारा ध्यानस्थ होकर श्री जिनेश्वर भगवान् के वास्तविक स्वरूप के दर्शन करते हुए विद्वान् पुरुष प्रसन्न होते हैं ॥११४॥

वायुना चाल्यमानस्य स्थैर्यं दीपस्य दुर्लभम्।
एवं वैराग्यहीनस्य दृढभक्तिरपोहिता ॥११५॥
न वैराग्याद्विना मुक्तिर्भक्तियोगः कदाचन।
विषयैर्भ्राम्यमाणस्य मनसः स्थिरता कथम् ॥११६॥

भावार्थ—जिस प्रकार पवन के प्रबल थपेड़ों से चलायमान (घुमने वाला) दीपक स्थिर होना दुर्लभ है। उसी प्रकार वैराग्य हीन व्यक्तियों के हृदय में भक्ति भाव की दृढ़ता का सचार होना भी दुर्लभ है ॥११५॥ वैराग्य के अभाव में भक्ति, ध्यान, तप और मुक्ति आदि कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। रात दिन विषय-वासनाओं में भ्रमण करनेवाले व्यक्तियों के मनकी स्थिरता विना वैराग्य के किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है ॥११६॥

रज्यद्बिम्बाधरश्रीपिशितसवलितं रोमराजीवरत्रम्,
भ्रूवल्लिक्षेपकालायसबडिशमिदं तत्कटाक्षोपकर्णिम् ।
अस्या मसारनद्या विसरतिकुतुकी निर्दयोऽयं कृतान्त-
स्तद्ग्रासोल्लासधारा परिहरत परं भ्रातरोलोकमीनाः ॥
नाहं कस्यापि कश्चिन्न च मम ममता नाशमूलं किलैत-
न्नित्यं चित्ते प्रियधं यदि जगदखिलं नाममिथ्येति बुद्धिः।
एतस्याहं समेतद्यदि मनसि तदा जन्मकर्माद्रियध्वम्,
मन्यध्वं गर्भचर्मा ध्रुतिमभयपदं किन्तु पुण्यं कुरुध्वम् ॥

भावार्थ—इस ससार रूपी नदी मे, यह मृत्यु रूपी निर्दयी धीवर, स्त्री के मास सयुक्त रक्तवर्ण वाले अधर स्वरूपी फल को, भृकुटियों के कटाक्ष रूपी कॉंटों से सयुक्त, रोमावली रूपी भयकर कन्टकाकीर्ण जाल मे डाल कर इस प्राणी रूपी मछली को प्रलोभन मे डालता है। और जब यह प्राणी रूपी मछली उस जाल मे फॅंस जाती है। तब मृत्यु रूपी धीवर उसे पकड कर काल का ग्रास बना लेता है ॥११७॥ इस ससार मे न तो मैं ही किसी का हो सका हूँ, और न मेरा ही कोई हो सका है। यह चित्त मे धारण की हुई मोह और ममता ही मेरा और तेरा भाव उत्पन्न कराती है। इस भयङ्कर जन्म मरण के दुःख को देनेवाले एव ससार मे जीव को भ्रमण करानेवाले मोह को छोड कर जन्म और मरण के भय से रहित कर्म का विनाश करके आनन्द पूर्ण चिन्मय मुक्ति की प्राप्ति का उपाय करना ही श्रेयस्कर है ॥११८॥

पितृभ्रातृसपिण्डबान्धवगणप्रौढप्रभावाग्रणीः
प्रारब्धद्व्रतमिष्टयोगनिपुणः प्रायात्पुरे ब्यावरे।
श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिनीवल्लभ
ध्यानेनानयत्स्वकीयसमयं मुक्तिश्रिय वेदिनम् ॥११६॥
किं लोलाक्षिकटाक्षलम्पटतया किं स्तम्भजृम्भादिभिः-
किं प्रत्यङ्गनिदर्शनोत्सुकतया किं प्रोल्लसच्चाटुभि'।
आत्मानं प्रतिबाधसे त्वमधुना व्यर्थं मदर्थं यतः-
शुद्धध्यानमहारसायनरसे लीनं मदीय मनः ॥१२०॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक प्रौढ प्रभावशाली श्री सूरचन्द्र-जी अपने पिता भाई आदि सम्बन्धी जनों के करुणा जनक वाक्यों को सुन कर भी अपने संकल्प पर दृढ रहे। और वे वहाँ से शीघ्र ही ब्यावर चले गये। वहाँ पर वे वीर प्रभु के ध्यान में अपने समय को व्यतीत करने लगे। यों श्री महावीर प्रभु के ध्यान में निमग्न होकर वे अब तृष्णा के प्रति कहने लगे कि हे तृष्णे! तू चपल नेत्र कटाक्ष वाली हाव भाव करनेवाली हास्य क्रीडा करनेवाली स्त्री के अङ्गोपाङ्गादि के दर्शन की उत्सुकता से मेरे मन और आत्मा को क्यों जाल में फँसाना चाहती है। मैं अब तेरे जाल में फँसनेवाला नहीं हूँ। क्योंकि अब मेरा मन रूपी भ्रमर प्रभु के चरणरूपी कमलों में गुञ्जार कर रहा है ॥११६-१२०॥

सज्ज्ञानमूलशाली दर्शनशाखश्च येन वृत्ततरुः।
श्रद्धाजलेन सिक्तो मुक्तिफलं तस्य ददातीह ॥१२१॥

भावार्थ—सद्ज्ञान रूपी जड से सयुक्त, सद्बुद्धि रूपी शाखा वाले, सच्चरित्र रूपी कल्प-वृक्ष को, जो पुरुष श्रद्धा रूपी जल से सिंचित करते हैं। वे पुरुष उस कल्प-वृक्ष द्वारा मुक्ति रूपी फल को अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१२१॥

यद्गार्हस्थ्यकुलोचित सुवसनं हित्वा स्थितिं स्थानके,
कृत्वार्हत्पदचिन्तन मुनिजनं ध्यात्वा निदित्वागमम् ।
न ज्ञानामृतमन्थनेन हृदयाम्भोधिर्द्वोमथ्यते,
यावत्तावदीय न मुक्तिरमणी केनाप्यहो लभ्यते ॥१२२॥
स्वाध्यायोत्तमगीतिमङ्गलजुषः सन्तोषपुष्पान्विताः-
सम्यग्ज्ञानविलासमण्डपगताः सद्ध्यानशय्याश्रिताः ।
तत्वार्थप्रतिबोधदीपकलिकाः क्षान्त्यङ्गनासङ्गिनो,
निर्वाणैकसुखाभिलाषिमनसो धन्या नयन्ते निशाम् ॥
ये जल्पन्ति व्यसनविमुखा भारतीमस्तदोषाम्,
ये श्रीनीतिश्रुतिमतिरतिप्रीतिशान्तीर्दन्ते ।
येभ्यः कीर्तिर्निलितमला जायते जन्मभाजाम्
शश्वत्सन्तः कलिलहतये ते नरेशान्न सेव्याः ॥१२४॥

भावार्थ—अब श्री ख्यूबचन्द्रजी, अपने गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी वस्त्रों को परित्याग करके साधु वस्त्र धारण कर पोषध-शाला मे रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन वे जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों में भक्ति पूर्वक ध्यान लगाए रहते। और निर्ग्रन्थ मुनि जनों की वन्दना तथा सेवा सुश्रूषा करते हुए निरन्तर इस बात का

चिंतन करते रहते, कि जब तक मैं ज्ञान रूपी रई (बिलौवनी) द्वारा हृदय रूपी समुद्र का मन्थन भली प्रकार से नहीं कर लूँगा, तब तक मुझ को मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकेगी ॥१२२॥ और जो पुरुष स्वाध्याय रूपी उत्तम गान से प्रमुदित हैं, सन्तोष रूपी पुष्पों से पूजित हैं, सम्यक् ज्ञान रूपी मण्डप में विलास करनेवाले हैं। सद्ध्यान रूपी शय्या पर स्थित होकर तत्त्वज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश द्वारा शांति रूपी सुन्दर वधू पर रमने वाले हैं। तथा निर्वाण रूपी अनुपम रत्न की अभिलाषा में ही लीन हो कर, अपनी रात्रियों को आनन्द से व्यतीत करते हैं। वे पुरुष वास्तव में साधु पुरुष हैं। और अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं। अतः हे जीव! अब तुझे भी ऐसे ही सन्त पुरुषों की सेवा में लीन हो जाना चाहिए, कि जो कष्ट नाशक पवित्र जिनोक्त वाणी का सेवन करते हैं। तथा जो अचल नीति, सम्पत्ति, कान्ति, मति, प्रीति, धैर्य एवं शान्ति के प्रदाता हैं। तथा जिनके प्रताप से प्राणियों की कीर्ति विमल होती हैं। और जो पाप के नाशक हैं ॥१२३-१२४॥

सत्यावाचं वदति कुरुते नात्मशंसान्यनिन्दे,
नो मात्सर्यं श्रयति तनुते तापकार परेषाम्।
नो शप्तोऽपि व्रजति विकृति नैति मन्यु कदाचित्,
केनाप्येतन्निगदितमहो चेष्टितं योगभाजः ॥१२५॥

भावार्थ—योगनिष्ट पुरुषों का मुख्य ध्येय एवं लक्ष्य यही होता है, कि वे प्रतिदिन सत्य भाषण करते हैं। अपनी प्रशंसा

तथा अन्य पुरुषों की निंदा से विमुख रहते हैं। दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाले कार्यों से सदैव विलग रहते हैं। वे निराभिमानता और शांति-पथ के अनुगामी होते हैं। तथा क्रोधादि कषायों से उनकी आत्मा विमुक्त रहती है ॥१२४॥

आलेखोत्पत्रमेकं पितृपदकमले खूबचन्द्रोविरागी,
शुभ्राज्ञा दीक्षितुं तं सदृढनियमनान्मोक्षमाकाङ्क्षमाणम्।
भक्तु लावण्यपूर्णं चलदृढनिमिष राजहंसोपजीव्यम्,
आम्यद्भ्रूयुग्मभङ्गं त्रिदशमुनिगणासेवनीयं प्रसन्नम् ॥११६॥
एष्यत्त्वं तात गेहे यदि शुभ मनसा निम्बाहाडानगर्याम्,
तर्हि प्राप्स्यत्त्वदाज्ञा जगदुपकृतये तातमात्रादिकानाम्।
लब्ध्वैतत्सद्मपत्रं परिचितपरमं ज्योतिरानन्दसान्द्रः,
सः प्रायान्निम्बाहाडां सुरुचिरनगरीं स्थानकेऽवात्सीत्सम् ॥

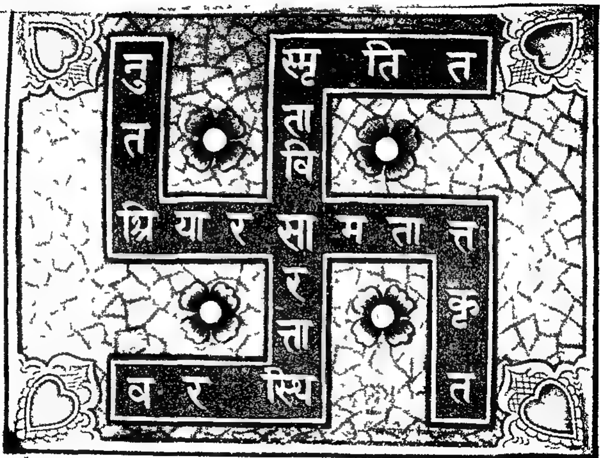
भावार्थ—तदनतर वैराग्यशील श्री खूबचन्द्र जी ने, ब्यावर से एक पत्र अपने पूज्य पिता श्री टेकचन्द्र जी के नाम लिखा। जिसमें उन्होंने दीक्षा की आज्ञा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की थी। इस पत्र के प्राप्त होते ही श्री टेकचन्द्र जी ने, मुक्ति के निश्चित अभिलाषी, मनोज्ञ, ध्यान प्राप्त, देव और मुनिगण द्वारा वाञ्छनीय दिव्य ज्योति की प्राप्ति के इच्छुक अपने सुपुत्र श्री खूबचन्द जी को पत्रोत्तर दिया, कि "यदि तुम निम्बाहेडा में आ कर दीक्षा के लिए आज्ञा प्राप्त करोगे, तो मैं तथा तुम्हारी माता और भाई आदि सभी कुटुम्बी जन मिल कर तुम्हें दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान कर

देंगे। अन्यथा नहीं।" इस प्रत्युत्तर को प्राप्त करके दिव्य ज्योति की प्राप्ति के लिए लालायित होने वाले तथा मुनि पद के परमानुरागी श्री सूरजचन्द्रजी ने अत्यन्त प्रफुल्लित हृदय से अपनी जन्म भूमि निम्बाहेडा नामक नगर की ओर दीक्षा की आज्ञा प्राप्ति के अर्थ प्रस्थान कर दिया। और वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्थानक में ही निवास किया॥१२६-१२७॥

पुत्रस्नेहसुधाब्धिवीचिलसिता साचेत्क्षणात्प्रसूः,
आयात्स्थानकमङ्गजं वदति सा आयाहि गेहं सुत ! ।
अद्धित्वं घृतसयुतं विधविधं स्वादिष्टमन्नादिकम्,
कीर्तिश्रीव्यवहारसाधनतया गार्हस्थ्यधर्मं भज ॥१२८॥
मातःस्थानकवासिनः किमशन गार्हस्थ्यगेहाङ्गणे,
आगच्छामि भवद्गृहे ग्रहयितुं भिक्षान्नमुष्णोदकम् ।
यावद्दुष्टरसक्षयाय नितरां नाहारलोल्यं जितम्,
सिद्धान्तार्थमहौषधे निरुपमश्चूर्णो न जीर्णो हृदि॥१२९॥
मिथ्यात्वानुचरैर्विचित्रगतिभिः संचारितस्योद्भटै-
रत्युग्रभ्रमसुद्गराहति वशात्संमूर्च्छितस्यानिशम् ।
संसारेऽत्र नियन्त्रितस्य निगडैर्मायामयैश्चोरवत्,
मुक्तिः स्यान्मम मातर कथमतः सद्वृत्तवित्तं विना ॥
दुःप्राप्यं मकराकरे करतलाद्रत्नं निमग्नं यथा,
संसारेऽत्र तथा नरत्व मथतत्प्राप्तं मया निर्मलम् ।

मातः पश्य विमूढता मम हहा नष्टं मया चेन्मुधा,
कामक्रोधकुबोधमत्सरकुधी माया महामोहतः ॥१३१॥

भावार्थ—जब उनकी माता ने उनके शुभागमन का सम्वाद सुना, तो वह पुत्र प्रेम मे विभोर होकर तत्क्षण दौडी दौडी उपाश्रय मे उपस्थित हुई। और अपने पुत्र श्री खूबचन्द्र जी से कहने लगी कि हे पुत्र ! घर को चल। और वहाँ नाना प्रकार के घृतपूर्ण स्वादिष्ट मिष्टान्नादि का भोग करके कीर्ति पूर्वक लक्ष्मी का अर्जन करते हुए गार्हस्थ्य-धर्म का पालन कर। तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी ने अपनी माता से विनय पूर्वक निवेदन किया, कि हे माता ! स्थानक (उपाश्रय) मे निवास करनेवाले व्यक्तियों के लिए गृहस्थ के घर भोजन करना किस प्रकार उचित हो सकता है ? अब तो मैं वैराग्य वृत्ति मे रहने के कारण साधु हूँ। अत अब आपके घर तो मैं केवल साधुओंके अनुकूल भिक्षान्न और गर्म जल आदि को लेने के लिए ही आ सकता हूँ। यदि साधु वृत्ति को अंगीकार करके फिर भी पुरुष ने खाने पीने की लोलुपता को नही छोडा और सिद्धान्त रूपी औषध से अपने हृदय को शुद्ध विशुद्ध नही किया तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। अनादि अनंत ससार मे, मिथ्यात्व की संगति के कारण, यह प्राणी, उन्माद रूपी भयकर आँधी के द्वारा गिरता पडता हुआ, अत्युग्र भ्रम रूपी मुद्गर की असह्य चोटो से मूर्छित हो रहा है। अत माया रूपी लोहे की मजबूत शृङ्खलाओ से बद्ध,



Calcutta Art Pre

प्राप्योतीच मुनीश्वरः स्वजननीं तातं वधू सोदरान्,
एव तत्पुरवासिनोजिनविभोवाक्यामृतैः श्रद्धया ॥१३४॥
श्रावक! तात! पवित्रपादकमलं नत्वा पवित्राशयः,
संसारोऽयमनन्तमाति भयदः भार्तापितः ! साम्प्रतम् ।
तत्वं तारय संसृतेः सुजनकः मत्सौख्यदः मन्ततेः,
चारित्रग्रहणे ममास्तु भवतां वचस्य चास्तूदयः ॥१३५॥

भावार्थ - हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्र जी अपनी आत्मा के प्रति कहने लगे, कि हे आत्मन ! तू स्वयं ही विनयशीलता, उग्रतम तपस्या तथा सर्वोत्तम क्षमा के गुणों से अलंकृत नहीं है। और तूने स्वयं अपने को प्रति क्षण सत्यता की कसौटी पर कस, सन्तोष प्राप्त नहीं किया है। अपने सिर पर मृत्यु के मंडराते रहने पर भी तू ने अपने नीच कर्मो की निन्दा नहीं की। और अब भी तू निष्क्रिय बन कर अपने भाग्य को ही दोषी ठहरा रहा है। अत बता, कि अब तेरे समान और कौन मूर्ख हो सकता है ? ॥१३३॥ इस प्रकार श्री खूबचंद्र जी को वैराग्य में सुदृढ देख कर वहाँ पर एक बहुसंख्यक हिंदू-मुस्लिम जनता का समुदाय एकत्रित हो गया। इन सब लोगों के देखते ही देखते हमारे चरित्रनायक, भावी मुनीश्वर श्री खूबचंद्र जी ने जिनदेव के वाक्यामृत द्वारा सन्तुष्ट तथा श्रद्धान्वित होकर अपने, माता, पिता, स्त्री और भाई आदि समस्त कुटुम्ब का परित्याग कर दिया ॥१३४॥ इस प्रकार मोह-माया से परित्यक्त होकर आपने अपने हृदय के पवित्र भावों से

प्रेरित हो पिता जी से कहा, कि पिता जी ! जन्म मरण और जरा आदि के दुखों से व्याप्त, यह सारा संसार मुझे अत्यन्त भयानक प्रतीत हो रहा है। अतएव आप मुझ को इस अथाह संसार-सागर से पार लगा दीजिए। क्योंकि पिता अपनी संतान के लिए सदैव सुख के साधन एकत्रित कर देते हैं। मेरे दीक्षा ग्रहण करने से आपके यश की कीर्ति होगी।

मातृभ्रातृकुटुम्बवर्गभगिनी तातस्वकीयाङ्गना,
दीक्षाज्ञा परिलभ्य योगिनपुणोऽद्राशिष्टवासादिकान्।
पश्चान्नीमचमागमद्यतिवरं श्रीनन्दलालाभिधम्,
दीक्षामर्जयितुं मुनिं सुमनसा नत्वा तथा प्रार्थयत् ॥१२६॥

भावार्थ—अब योग निष्ठ श्री खूबचन्द्रजी ने अपने भाई माता, बहिन आदि कुटुम्बी वर्ग की आज्ञा प्राप्त कर के वहाँ से प्रस्थान किया। और नीमच पहुँच कर सर्व प्रथम वहाँ विराजित मुनिवर श्री नंदलालजी महाराज के चरण कमल में वन्दना करके दीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ॥१२६॥

* * *

तृतीय परिच्छेद

—※—

दीक्षा महोत्सव और प्रारम्भिक चातुर्मास

वैराग्योचितवस्त्रभूषितवपुः सङ्घं समानीरचत्,
माधोर्वस्त्रसमर्चितस्य न पुनः दीक्षाश्वरोहं कवचित् ।
नानागीतसुवाद्यमङ्गलरवैस्तत्स्थानकं चर्चितम्,
तैर्दत्तानुमतिर्व्रत म समलात्पौरः कृताभ्युत्सवम् ॥१३७॥
धृत्वा पञ्चमहाव्रतानि समितिप्रोद्दामगुप्त्याङ्किता-
न्येषप्रोद्धृतमेरुमानवमहीसाम्य चमातोऽभजत् ।
सोधूना निविधैर्गुणैर्धुरितपः कृत्येऽभवद्धैर्यवत्,
शास्त्रस्याध्ययने च देवगुरुवत् दर्भाग्रबुद्धिर्मुनिः ॥१३८॥

भावार्थ-नीमच के श्री सघ ने दीक्षा भावी श्री खूबचद्र जी का दीक्षा-महोत्सव बडे समारोह पूवक मनाने का निश्चय किया । महोत्सव के सचालकों ने जब दीक्षार्थी श्री खूबचद्र जी से अश्वारोहण के लिए साग्रह प्रर्थना की। तब वैराग्योचित वस्त्रों से सुसज्जित चरित्रनायकजी ने श्री सघ से दृढता पूर्वक कहा "मैंने पहले से

ही स्वयं साधु वेष पहन लिया है अतएव अब मुझे प्रव्रज्याग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है।' स्वामीजी के इस वक्तव्य को सुन कर श्री संघ ने अनेक प्रकार के सुन्दर वाद्य और सुमधुर गीतों के द्वारा इस मङ्गलमय महोत्सव का आनंद सम्पादित किया ॥१३७॥ अब हमारे चरित्रनायकजी निर्ग्रंथ दीक्षा से दीक्षित हुए। अर्थात् अब उन्होंने पाँच महाव्रत, पाँच-समिति और तीन गुप्तियों को धारण करते हुए मुनि पद को स्वीकार किया। और अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा में रह कर नित्यप्रति विनय भक्ति पूर्वक पठन पाठन में दत्तचित्त हुए। थोड़े ही दिनों में वे मुनि-पदोचित विविध गुणों से विभूषित हुए। तीव्र तप विधान के द्वारा अपनी आत्मा को विशुद्ध किया और अपने कुशाग्र बुद्धि बल द्वारा, शास्त्राध्ययन किया ॥१३८॥

वर्षे पञ्चाजुनन्दभ्रु नपरिमितमब्दिक्रमीये तृतीया,
तिथ्यामाषाढमासे गणधरदिवसे कृष्णपक्षे तथा च।
प्राज्यप्रौढप्रमादप्रतिभरनिधनप्राप्तदीक्षाप्रतापः
प्रोच्चैः प्रीतिं प्रयाति प्रतिकलममलां प्राणिनां प्रेक्षमाणः

भावार्थ—इस प्रकार विक्रम संवत् १६५२ के आषाढ शुक्ला ३ सोमवार को हमारे चरित्रनायक श्री ग्रूपचन्द्रजी ने दीक्षा ग्रहण की। और काम क्रोधादि कषायों पर विजय प्राप्त करके अपनी आत्मा का सर्वाङ्ग कल्याण करने के लिए समुद्यत हुए ॥१३६॥

कृत्वा चोलपटं तनौ सितपटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम्,
हस्ते पात्रमथोरजोहरणकं निक्षिप्य कक्षान्तरे।

बद्ध्वा मम्मुखवस्त्रिका शुचितरामाकाशगङ्गासमाम्
वैराग्याम्बुजिनीप्रबोधनपटुः प्रध्वस्तदोषाकरः ॥१४०॥
आरम्भिष्टसुवेदितुं च विविधा वैकालसूत्रादिकम,
ठाणाङ्गं समवायमिष्टफलदं प्राधीत्य तत्रान्तरे ।
सर्वार्हन्मतशास्त्रपारमगमच्छ्रीखूबचन्द्रो मुनिः,
जातोऽन्यागमदर्शनोत्सुकमना मुक्तिश्रियं वेदितुम् ॥
चातुर्मासमनेषशुद्धचरितः श्रीनन्दलालं गुरुम्,
सद्भक्त्या परिसेव्य प्रोदयपुरे मेवाडदेशान्तरे ।
जैनस्थानकवासिशास्त्रनिपुणः सम्यग्दशा मद्गुणी,
लीलाभङ्गमहारिभिन्नमदन तापाय हृद्या परम् ॥१४२॥

भावार्थ--उन्होंने अपने शरीर पर शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण किये। मुँह पर मुख वस्त्रिका बाँधी। कटि पर चोलपट्टा, हाथ में पात्र और बगल मे रजोहरण ग्रहण किया। अब वे अपने मुँह पर बँधी हुई आकाश गङ्गा की शोभा को धारण करनेवाली स्वच्छ श्वेत मुख-वस्त्रिका तथा केश-लुञ्चित मस्तक द्वारा, ऐसे सुशोभित हो रहे थ, मानो वैराग्य रूपी सरोवर के कमल को प्रफुल्लित करने वाले एक देदीप्यमान सूर्य है। उन्होंने क्रमश दशवैकालिक आदि जैन तत्व प्रदर्शक शास्त्रो का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन एव मनन किया। यों काम-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा मे रह कर उन्होंने अपना आरम्भिक चातुर्मास उदयपुर मे व्यतीत किया ॥१४० १४१-१४२॥

तत्पश्चान्मुनिसत्तमः समगमच्छ्रीखाचरोदस्थले,
देवीलालयतीश्वरेण सहसा व्याख्याद्वितीयाद्विके ।
मेवाडे पृथुसादडी स्वगुरुणा सार्द्धं समायात्तदा,
व्याख्यानामृतमिश्रार्द्र मनसा श्रोतृ न समासीपघन् ॥१४३॥
तुर्येऽब्दे समशिश्रियद्गुरुवरं मत्स्थानके नीमचे
नीत्वा माणिकचन्द्रयोगनिपुणं श्रीमन्दसौरेऽगमत् ।
एवं पर्यटनेऽन्यपिष्टसुदतः श्रीजावरास्थानके,
विख्यातार्हद्भक्तिभावितः सन्धू णिकन्मापनत् ॥१४४॥

भावार्थ—आपने अपना द्वितीय चातुर्मास सवत् १६५२ में सुप्रसिद्ध भवनानन्दी मुनि श्री देवीलालजी महाराज के साथ खाचरोद में किया । और फिर तीसरा चातुर्मास सवत् १६५४ में आपने अपने गुरुजी के साथ रह कर बड़ी सादडी में किया । वहाँ की जनता आपके व्याख्यानों से बड़ी ही प्रभावित हुई ॥१४३॥ चौथा चातुर्मास भी सवत् १६५४ में आपने अपने गुरुजी के ही चरण कमल में रह कर नीमच शहर में व्यतीत किया । तत्पश्चात् सवत् १६५६ में पाँचवाँ चातुर्मास तपस्वी मुनि श्री माणिकचन्दजी म० के साथ मन्दसौर में किया । आपके आत्म ज्ञान गर्भित उपदेशों से मन्दसौर की जनता का ध्यान आत्म कल्याण की ओर आकर्षित हुआ । इस प्रकार जनता को सन्मार्ग की ओर लगाते हुए आपका शुभागमन जावरा नगर में हुआ ॥१४४॥ -

आसीन्नीमचसन्निकृष्टघरणौ ग्रामे शुभे जीरणे,
श्रीमद्गौतमलालनामसुधियोभार्यामृताभिधा ।
तत्कुक्षीपुटतोऽभवच्छुचिमणिः श्रीसौख्यलालः शिशुः,
रीयाता पितरौ तदल्पवयसि स्वर्गं विहायात्मजम् ॥१४५॥

जीरण में एक बीसार्थी की शैला

भावार्थ—नीमच के समीपस्थ जीरण नामक एक शुभ ग्राम में श्रीमान गौतमलाल नामक एक ओसवाल महानुभाव निवास करते थे। उनकी स्त्री अमृतदेवी की कुक्षि से एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। जिसका नाम सुखलाल रक्खा गया। मगर दुर्भाग्यवश इस बालक को इसके माता पिता बाल्यावस्था में ही छोड़कर पर लोक को सिधार गये ॥१४५॥

सम्यग्धर्मेव्यवसितपरः पुण्यकर्मैकशाली,
पन्नालालोऽमृतमयवपुश्चन्द्रवच्छान्तिदाता ।
शोभालालप्रमुदितसुतः कासवार्ये सुगोत्रे,
सद्वृत्ताढ्योमुनिरिवजनोऽशिशयत्सौख्यलालम् ॥१४६॥

भावार्थ—धर्म परायण, पुण्य-कार्य में लीन, चन्द्र के समान शांति के प्रदान करनेवाले, कासवाँ गोत्रोत्पन्न श्रीमान् सुनालालजी के भ्रात, राधु न्दयी श्रीमान् पन्नालाल जी ने इस बाल रत्न सुखलाल का लालन-पालन किया ॥१४६॥

मुक्त्वा स्वार्थं सकृपहृदयो यः परार्थं करोति,
यो निर्व्याजा निजितकलुषा धर्मबुद्धिं तनोति ।

यो निर्गर्वो निधियति हितं गर्हते नापवादम्,
मत्पुन्नाग· मननमुक्तः पुण्यवान् भाति लोके ॥१४७॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीमान पन्नालाल जी के समान कृपा एवं करुणा पूर्ण हृदय से पर हित व्रत को धारण करते हैं। तथा जो छल कपट, अभिमान, और पर निंदा आदि पापों से रहित होकर धर्म-बुद्धि को ग्रहण करते हैं। वे पुण्यवान् प्राणी वास्तव में पुरुष शिरोमणि होकर लोक में शोभा के पात्र बनते हैं ॥१४७॥

हीरालालकविः कलासु निपुणोव्याख्यानदक्षःसुधीः,
शम्नयोगपथानुगा सहृदया· श्रीसूरचन्द्रादयः।
भूरा श्रीमुनिसूरचन्द्रशुभद व्याख्यानमाजिज्ञपत्,
मिथ्येद सुखलाल उच्चगतिभूः ममारमायाजलम् ॥१४८

भावार्थ—सौभाग्य से एक बार उसी जीरण नामक ग्राम में कविवर मुनि श्री हीरालालजी म० एवं हमारे चरित्रनायक योग-निष्ठ, धैर्यवान मुनि श्री सूरचन्द्रजी म० आदि मुनियों का शुभाग मन हुआ। चरित्रनायक मुनि-श्री जी के ओजस्वी व्याख्यान को सुन कर के बालक सुखलालजी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। और उन्हें यह संसार मिथ्या भासित होने लगा ॥१४८॥

इमां प्रवृत्तिं सुखलालबालपितृस्वसाऽरुद्धनिजात्मजेन।
श्रीकासवागोत्रजधर्मचेता भवानिगमोऽज्ञपयत्ततस्ताम् १४६॥

भावार्थ—बालक रत्न श्री सुखलालजी की इस वैराग्य वृत्ति में उनकी भुआ ने अपने पुत्र द्वारा रोड़ा अटकाया। तथा इसी

प्रकार कासवाँ गोत्रोत्पन्न धर्म प्रेमी श्रीमान् भावानीराम जी भी वैराग्य भावी श्री सुखलालजी को समझाने लगे। किन्तु बालक-रत्न श्री सुखलालजी की वैराग्य भावना पूर्ण रूपेण सुदृढ थी। अत उन्होंने किसी की भी बात न मानते हुए दीक्षा ग्रहण करने का ध्रुव निश्चय कर लिया ॥१४६॥

तत्राद्रीन्द्रियभक्तिभूपरिमिते वैमाखमासे रवौ,
कृष्णाया प्रतिपत्तिथौ शुचिमनाऽदीक्षिष्ट शिष्यं नवम्
प्रासैकादशवार्षिक सुचरित ज्ञानामृतैः सीक्तिम्,
नामान सुखलालमोदितमति सद्वाञ्छया प्रार्थितम् ॥१५०॥

भावार्थ—तत्पश्चात् धैर्यवान प० मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० ने इन ग्यारह वर्षीय वैराग्यार्थी सुखलालजी को जो कि दीक्षा ग्रहण करने के लिए लालायित थे। विक्रम सवत् १९५७ के, वैशाख कृष्णा १ रविवार को दीक्षित किये ॥१५०॥

अध्यायिसुखलालेन, श्रीपञ्चपरमेष्टिनाम्।
नमस्कारपरं तत्र मनेच मैसुकर्मठः ॥१५१॥
अध्यैष्ट षड्विंशजिनेन्द्रपूतसूत्राणि हिन्दीगिरमुत्सवेन।
उर्दूक्तिरम्यञ्चवचोविलास गुरुप्रसादात्सुखलालयोगी ॥

भावार्थ—अब नवदीक्षित मुनि श्री सुखलालजी महाराज ने पंच परमेष्ठी तथा अपने गुरुदेव की सेवा भक्ति पूर्वक ज्ञानाभ्यास किया। और स्वल्प समय में ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा हिन्दी,

उर्दू आदि भाषाओं का तथा जैन सूत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया ॥१५१-१५२॥

गुरुप्रसादोदकसिक्तबुद्धिलताकवित्व फलमाससिद्ध ।
यदीयसत्काव्यसुधाप्रवाहो देव्यागिरालातिकला विलासम्

भावार्थ—गुरु की प्रसन्नता रूपी जल धारा से सिञ्चित मुनि श्री सुखलाल जी महाराज की बुद्धि रूपी लता से कविता रूपी फल उत्पन्न हुआ। उस कवितारूपी फल की अमृतधारा का प्रवाह फिर ऐसा प्रवाहित होने लगा, कि जो सरस्वती की वाणी के विलास को ग्रहण कर रहा है ॥१५३॥

सुखयमनिधिभूमिवत्सरे जीरणाख्ये,
समनयतसुभावैः शुभ्रचातुः ससासम् ।
अनुपमगुणराशिः शीलचारित्रभूपः-
प्रगदति जिनवाण्या सर्वकल्याणमूलम् ॥१५४॥
हरति जननदुःख मुक्तिमार्गस्य निधत्ते,
रचयति शुभबुद्धि पापबुद्धि धुनीते ।
अवति सकलजन्तून् कर्मशत्रून्विहन्ति,
प्रशमयति च नो यो जैनधर्म दधाति ॥१५५॥

भावार्थ—सवत् १६५८ का चातुर्मास हमारे चरित्रनायक धैर्यवान् प०मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० ने जीरण मे किया। इस चातुर्मास मे वहाँ पर आपके प्रति दिन व्याख्यान हुए। जिनके प्रभाव

से जैन धर्म, जो कि जन्म मरण के दुःखों का अन्त करने वाला और मुक्ति के अक्षय सुखों का प्रदाता है। और जो सद् बुद्धि प्रदायक पाप बुद्धि प्रभंजक, सकल प्राणियों का रक्षक और कर्म शत्रुओं का विध्वंसक है। ऐसे परम पवित्र जैन धर्म का खूब ही प्रबल प्रचार हुआ। और जनता के हृदयों में अनेकानेक शुभ भावनाओं की जागृति हुई ॥१५४–१५५॥

ग्रहशिखिमुखनन्दक्ष्मापुरीमुज्जयन्तीम्,
समगमदुपदेशैः कर्मनिर्मूलनाय ।
वदति वचनमुच्चैर्दुःश्रवं कर्कशादि-
कलुषविदलतायां ता क्षमा श्लाघते सः ॥१५६॥

भावार्थ—आपने संवत् १९५९ का चातुर्मास उज्जैन में किया। वहाँ पर आपने जगत्‌जनता के कर्मों को निर्मूल करने के लिए प्रतिदिन धारावाही सदुपदेश प्रदान किया। क्षमा की व्याख्या और प्रशंसा करते हुए आपने घोषित किया, कि दुःखदायी कठोर वचनों को सहन करना ही क्षमा है। क्षमा बड़ा ही परम पवित्र और प्रशंसनीय गुण है ॥१५६॥

सीहागता पञ्चदिनोपवासैरत्रैव मूलान्न पुनश्च जाता ।
तपोहि शस्त्रं कृतपूर्वकर्मसामर्थ्यछेदे भवतीति भूमौ ॥

भावार्थ—इस चातुर्मास में आपने पाँच दिन का अनशन व्रत किया। जिसके प्रभाव से आपकी तिल्ली समूल नष्ट हो गई।

और फिर उत्पन्न होने का उसका साहस ही नहीं हुआ। तब आपने जनता को उपदेश दिया, कि इस संसार में पूर्व कृत कर्मों के छेदन-भेदन का एक मात्र अमोघ शस्त्र तप ही है ॥१५७॥

गगनरसनिधिज्यानग्गढे माण्डलारये,
प्रचुरमनुजसंख्याऽपिप्रियत्पञ्चरङ्गीम्।
अमृतमथनसिक्ता धर्मभावप्रसक्ता,
शपथमवृणुतामी प्रावितु जीवहिंसाम् ॥१५८॥

भावार्थ—आपने विक्रम संवत् १९६० का चातुर्मास माँडलगढ तलहटी में समाप्त किया। वहाँ पर स्वधर्मियों के केवल ५० घर होते हुए भी तपस्या की चार पचरंगियाँ हुई। तथा आपके प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित होकर बहुसंख्यक जैनेतर जनता ने मांस भक्षण का परित्याग किया और जीवन पर्यंत जीव हिंसा न करने की दृढ प्रतिज्ञा धारण की ॥१५८॥

किमिह परमसौख्य निस्पृहत्व यदेतत्,
किमथ परमदुःखं सस्पृहत्व यदेतत्।
इति मनसि विधाय त्यक्तसङ्गा सदा ये
विदधति जिनधर्मं ते नराः पुण्यवन्तः ॥१५९॥

भावार्थ—वहाँ पर आपने नाना प्रकार के सदुपदेशों द्वारा जनता को यह बताया, कि तृष्णा के त्याग के सामने संसार में और कोई सुख नहीं है। और माया प्रपंच में फँसने के समान

अन्य कोई दुःख नहीं है। अतः जो प्राणी इस बात का हृदयंगम करके तृष्णा के वशीभूत न होकर कुमार्ग का परित्याग करते हैं, तथा जीव दया गर्भित जैन धर्म को धारण करते हैं, वे प्राणी महान् पुण्यवान् हैं ॥१५६॥

व्रुपरिनिधिभूमित्वत्सरे चित्रकूट-
गिरिपदपरिसीमाग्रामचित्तोडनाम्नि ।
मुनिवरसुपदेशैर्भूरिजैनान्यधर्म-
पथगपुरुषनारीहृत्सरोजान्यफुल्लत् ॥१६०॥

भावार्थ—तत्पश्चात् विक्रम संवत् १९६१ का चातुर्मास आपने चितौडगढ़ की तलहटी में किया। वहाँ पर भी आपने जैन तथा जैनेतर आबालवृद्ध नर नारियों के हृदय रूपी कमल को अपने उपदेश रूपी प्रखर प्रतापी सूर्य की रश्मियों से विकसित कर दिया ॥१६०॥

पशुवधपरयोषिन्मद्यमासादिसेवा-
दुरितप्रदतमाखुघ्राणरोमन्थपानम् ।
इतिविदुधुविरेऽस्मिन् रात्रिजग्धिं प्रबोधैः-
सुगुरुपरिचयः किं मङ्गलं नैव धत्ते ॥१६१॥

भावार्थ—वहाँ के नागरिकों ने आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर जीव हिंसा, परस्त्रीगमन, मद्यपान, मांसभक्षण, घृणित मादकद्रव्य जैसे तम्बाकू आदि समस्त कुव्यसनों का सेवन एवं

रात्रि भोजन आदि दुर्गुणों का परित्याग किया। ठीक है, आदर्श पुरुषों के उपदेश से क्या क्या शुभ कार्य नहीं होते ? अर्थात् सभी शुभ कार्य सम्पन्न हो जाते हैं ॥ १६१ ॥

तत्राजीवनपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं परं तपः।
स्वीचक्रे पोषितुं सुज्ञोवृद्धिचन्द्रः सपत्नीकः ॥१६२॥
शीलं पालयितुं श्रेष्ठं भैरुलालो महाजनः।
गडोलियाख्योऽङ्गीकार्षीत्स्वस्त्रिया सहयौवने ॥१६३॥

भावार्थ—चरित्रनायक जी के उपदेश से प्रभावित हो कर चित्तौड़ निवासी श्रीयुत वृद्धि चन्द जी सुराना सरिश्तेदार ने जीवन पर्यन्त सपत्निक ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। इसी प्रकार नवयुवक भैरुलालजी गडौलिया ने भी अपनी यौवनावस्था होते हुए भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया ॥१६२-१६३॥

हरितकमुदकं यच्छीतलं रात्रिभोज्यम्,
धरणितलजकन्दं श्रावकाः संविहाय।
गुरुवरशुभबोधैर्भूपसिद्धार्थसूनु-
ममृतफलसुखाय आस्तुवन् कल्पवृक्षम् ॥१६४॥

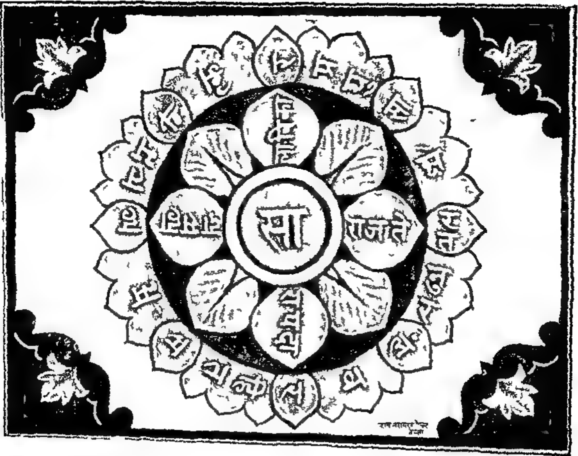
भावार्थ—इस के अतिरिक्त वहाँ के अनेक श्रावक श्राविकाओं ने आपके सदुपदेश से हरी, सब्जी, कच्चा पानी, रात्रि भोजन जमीकन्द आदि का परित्याग कर दिया। और वे सब जैन धर्म तथा श्री महावीर स्वामी की आराधना में तल्लीन हुए ॥१६४॥

वर्षे नेत्रगुहाननग्रहधरा स्थित्वा पुरे जावरे,
चातुर्मासमहोत्सवं ममपुपद्धर्मोपदेशामृतैः ।
तत्माविघ्य तपोधनोमुनिवरोऽतापद्धजारीमल-
स्तक्रे णैकनवत्यहानिनियमैः प्रणिष्ट सज्जानतः ॥१६५॥

भावार्थ—तदनन्तर, विक्रम सं० १६६२ का चातुर्मास आपने जावरा में किया। वहाँ पर आपकी शरण में रह कर तपस्वी मुनि श्री हजारीलालजी म० ने अपनी आत्म-शुद्धि के लिए केवल तक्र (छाछ) के आधार पर ६१ दिन का अनशनव्रत धारण किया। इस उग्रतप व्रत की पूर्ति के दिन भारत के विभिन्न नगरों और ग्रामों से सैंकड़ों ही नहीं, किंतु हजारों की संख्या में नर-नारी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। और इस दिन लगभग दो सौ स्कन्ध हुए।

अयातत्पुरसस्थितोगुरुवरज्ञानामृतैः सीकितो-
योगाभूपणखुबचन्द्रचरणौ करतूरचन्द्रोवणिक् ।
दीक्षार्थी मुनिसत्तमं प्रणयतोऽस्तारीद्भवाब्धिसवम्,
सर्वेपामथ च प्रयच्छसि फलं येषां मनोवाञ्छितम् ॥१६६॥

भावार्थ—चरित्रनायकजी के उपदेशामृत को पान करके वहाँ के निवासी चपरोद गोत्रोत्पन्न एक अल्पवयस्क बालक श्री कस्तूरचंदजी ओसवाल को तत्क्षण ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। तब वे मुनि श्री खूबचंदजी महाराज की सेवा में सादर प्रार्थना करने लगे, कि गुरुजी ! आप सब प्राणियों को संसार रूपी समुद्र



Calcutta Art Press Delhi

म० को हमारे चरित्रनायक श्री खूबचदजी म. के नेश्रित कर दिये ॥१६७-१६८॥

गङ्गागग्रहगह्वारीपरिमिते वर्षे समारोहणे,
चातुर्मासमनेष्ट तत्र सुमतिश्चित्तौडनाम्नि पुरे ।
वर्षेऽस्मिन्नडिमादडीं सविनयी कस्तूरचन्द्राग्रजो-
दीक्षायै गुरुसत्तमं सविनय श्री नन्दलाल ययौ ॥१६६॥

भावार्थ—विक्रम सवत् १९६२ का चातुर्मास आपने चित्तौडगढ में किया। उसी वर्ष बडी सादडी से आपके सुशिष्य श्री कस्तूरचन्दजी म के सासारिक ज्येष्ठ बन्धु जावरा निवासी श्री केसरीमल जी चपरोद, गुरुवर्य श्री नन्दलाल जी म० की सेवा मे उपस्थित हुए। और विनय पूर्वक दीक्षा के लिए प्रार्थना की ॥१६६॥

श्री नन्दलालो मुनिसत्तमस्तम्
संघाज्ञया दीक्षितकं विधाय
नेश्रायके चारितनायकस्य ।
चकार सर्वं परिचिन्त्य भावम् ॥१७०॥

भावार्थ—तव श्री सघ की आज्ञा से गुरुवर्य श्रीनन्दलाल जी म० ने इन्हें दीक्षित करके हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी महाराज की नेश्राय मे कर दिये ॥१७०॥

आम्नातर्कनिधिक्षितिप्रचलिते श्रीखूबचन्दोगुरु-
श्चातुर्मासमहोत्सवाय समयाच्छ्रीनिम्बाहाडापुरे ।

तत्स्थाने वडिमादडीस्थितिकरः श्रीहर्षचन्द्रोऽमिते,
मार्गे च प्रतिपत्तिथौ बुधदिने शिष्यश्चतुर्थोऽभवत् ॥१७१

भावार्थ—आपने विक्रम संवत् १९६४ का चातुर्मास निम्बाहेड़ा मे किया। और वहाँ मार्गशीर्ष कृष्णा १ बुधवार को बड़ी सादड़ी निवासी श्री हर्षचन्द्जी अपर नाम रामप्रसादजी अग्रवाल को दीक्षित किये। इस प्रकार आपके अब तक चार शिष्य हुए। यहाँ चातुर्मास मे तपस्या आदि धर्मवृद्धि बहुत हुई ॥१७१॥

प्राणाङ्काङ्कवसुन्धराप्रमुदितेऽङ्के विक्रमोर्वीभृत–
श्चातुर्मासमनेष्टधर्मनिपुणश्छोट्याह्वयामादडीम् ।
ऊर्जेपूर्णशशाङ्करम्यदिवसे श्रीजावराग्रामिकः–
प्रेपीदत्रकटारियाकुलमणिः श्रीरामलालाभिधः ॥१७२॥
प्रेम्णा स्वीयसुत हजारिमलमानोयप्रवीण गुरुम्,
दीक्षा दातुमचेष्ट पादकमल प्रापूपुजच्छ्रद्धया ।
शिष्योऽभूत्किलपञ्चमः शुचिमतिः श्रीमद्धजारिमल्लः–
पञ्चप्राणमसत्वशिष्यगणतोविभ्राजते स्म मुनिः ॥१७३॥

भावार्थ—वि०सं० १९६५ का चातुर्मास छोटी सादड़ी मे हुआ। यद्यपि यहाँ पर स्थानकवासियों के घर कम थे। तथापि धर्म-प्रभावना बहुत अच्छी हुई। यहाँ पर जावरा निवासी कटारिया गोत्र के रत्न श्री रामलाल जो अपने पुत्र श्री हजारीमल (इस चरित्र के लेखक) को लेकर आये। और प्रसन्नता पूर्वक अपने

हार्दिक भावों से सादर अनुमति देते हुए कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन दीक्षा ग्रहण करवाई। अब मुनि श्री खूबचद जी म० इस समय अपने प्राणों के समान पाँच प्रिय शिष्यों से अत्यन्त शोभायमान् हुए ॥१७२-१७३॥

रिप्वर्यङ्कशशीमिते शुभतमे श्रीविक्रमे वत्सरे,
चातुर्मासमहोत्सवं समनयत् श्रीमन्दसौरे मुनिः ।
व्याख्यानाद्भवतो बभूवजनता कल्याणक सौख्यदम्
लोकाः कर्मनिवर्हणाय च वहु संतेनिरे सवरम् ॥१७४॥

भावार्थ—वि० स० १६६६ का चातुर्मास मन्दसौर में हुआ। वहाँ पर आपके सदुपदेश से जनता का बड़ा भारी कल्याण हुआ नर-नारियों ने अपने कर्मों के निवारणार्थ सवर किया ॥२७४॥

द्वीपार्यम्नुदचन्द्रमः परिमिते व्यातीच संवत्सरे,
चातुर्मासमहोत्सव सुनगराग्रायाञ्च तत्र स्थले ।
मुग्धाः सद्गुरुवाक्पतिसमभवन् तच्छ्रावकाः श्राविकाः,
धर्मध्यानदयोपवासकरणाद्यायविलं टिग्पिरे ॥१७५॥
यद्वाचा तरणित्विपेवकलितोल्लासं मन. पङ्कजं,
बिभ्रन्छ्रीयशवन्तरावशुचिधीर्गाम्भीर्यपाथोनिधिः ।
सौजन्यामृतसागरः परहितप्रोरव्धवीरव्रतो-
भात्याग्रापुरभूषणः प्रियकरः क्रोधश्च नालम्बते ॥१७६॥
राऊएयं प्रभुताधनं त्रयमिदं यत्रैकसंस्थं भवे-

संत्रास्ते न विवेकता मनयैर्वैरोघभागोयतः ।
एवं सत्यपि साम्प्रतं त्र्यमिद ससेवितोऽहर्निशम्,
श्रेष्टश्रीयशवन्तरायनयघोर्निर्मत्सरो दृश्यते ॥१७७॥
मेरुर्मानितया धनैर्धनपतिर्वाचा च वाचस्पति-
र्भोगेनापि पुरन्दरः शुचितया दानेन चिन्तामणिः ।
गाम्भीर्येण महोदधिः करुणयाऽप्यन्यश्च ताथागतः,
श्रीसिद्धार्थनरेशसुतुपदयोर्भक्तश्च पूर्णः सदा ॥१७८॥
रक्तोऽय गतिभारभाजिचरणे स्मेरास्य पङ्केरुह,
अक्रीडनपरमेष्टिनाहनतया प्राप्तप्रतिष्ठप्रभः ।
श्रेष्टः श्रीयशवन्तराय उचितोयोगप्रवीणाज्ञया,
जीवालम्भमरूरुधत्करुणया मावत्सरीपर्वणि ॥१७९॥

भावार्थ—विक्रम संवत् १९६७ में, आपका चातुर्मास संयुक्त प्रान्त के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर आगरा में हुआ । वहाँ पर, आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर, श्रावक-श्राविकाओं ने धर्मध्यान, दया, उपवास एवं आयम्बिलादि बहुत से धार्मिक कार्य किये ॥१७५॥ और आपकी पवित्र वाणी द्वारा सद्बोधित हो कर, सद्बुद्धि सम्पन्न, गम्भीरता के सागर, सौजन्य सिन्धु, परहित व्रतधारी, शान्तचित श्रीमान् सेठ यशवन्तरायजी का हृदय, इस प्रकार प्रफुल्लित हुआ, जैसे कि सूर्य की किरणों से कमल विकसित होता है ॥१७६॥ श्रीमान् सेठ यशवन्तरायजी युवावस्था,

राज्यसम्मान और लक्ष्मी इन तीन प्रकार के मदों से मयुक्त होते हुए भी, अभिमान से कोसों दूर थे। अर्थात वे परम शान्त स्वभावी और निराभमानी थे ॥१७७॥ यह सेठ जी सच्चे भक्त, लक्ष्मी सम्पन्न, योग्य वैभवशाली तेजस्वी, दानी, गम्भीर और परम दयालु थे ॥१७८॥ इस प्रकार भगवान् महावीर के सच्चे भक्त श्रीमान सेठ यशवन्तरायजी ने हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी महाराज के सदुपदेश से प्रेरित हो कर, सवत्सरी पर्व के दिन, आगरा नगर के चार प्रसिद्ध कत्लखाने, जिनमें नि हजारों पशुओं का वध होता था, बन्द करवा दिये ॥१७९॥

आग्रातोमथुरादिकञ्च विहरन् दिल्लीं तत आययौ,
तत्र श्रीमुनिलालचन्द्रजगठा आसन्तदातान्पुनः ।
प्रामेलिष्टययौ ततोऽमृतमरं श्रीलालचन्द्रास्तदा,
कालिन्द्याः पुलिने पर मुनिमनु प्रेम्णागताः भावतः ॥

भावार्थ—आगरा नगर का चातुर्मास समाप्त करके मथुरा, कोसी, पलवल आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए आपका शुभागमन भारत की सुप्रसिद्ध राजधानी दिल्ली में हुआ। इस समय दिल्ली में पजाबी सम्प्रदाय के मुनि श्री लालचन्दजी महाराज विराजमान थे। आप ब्रह्मचारी तथा स्थविर पद विभूषित थे। हमारे चरित्र-नायकजी दिल्ली पहुँचते ही उनसे मिले भेंटे। परस्पर बडा ही प्रेम तथा वात्सल्यता का व्यवहार रहा। वहाँ से आपने अमृतसर की

ओर प्रस्थान किया। जब दिल्ली से आपकी विदाई हुई,तब स्थविर-पद विभूषित मुनि श्री लालचन्दजी महाराज आपको यमुना नदी के पुल के पार तक पहुँचाने गये ॥१८०॥

देहलीतोलुहाराख्य सरायं वामनोलिकाम् ।
सरसलीं हीलवाडीं बडौत कान्धाला तथा ॥१८१॥
तीतर्वाडाञ्च कर्नाल वर्सत कुरुक्षेत्रकम् ।
अम्बालाञ्च रमणीयं पटियालापुरं तथा ॥१८२॥
नाभा मालेरकोटञ्च लुधियाना कपूर्थलाम् ।
जालधर ऋ डियाला गुरुर्योगारिनन्दभू ॥१८३॥
वर्षेऽमृतसरस्थाने स्वल्पकालं समाधृत ।
श्रद्धामभृद्धिसम्पन्नबन्धुरस्तत्रविदमुनिः ॥१८४॥

भावार्थ—आप दिल्ली से प्रस्थान करते हुए लुहारासराय, वामनोली, सरसली हिलवाडी, बडौत, कान्धला, तीतरवाडा, बडसत, करनाल, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, पटियाला नाभा, मालेरकोटला, लुधियाना कपूरथला जालन्धर और झन्डियाला आदि क्षेत्रों में अपने सदुपदेश द्वारा जैन धर्म के पवित्र सिद्धान्तों का प्रचार करके विक्रम सवत् १९६८ में अमृतसर पधार गये ॥१८१-१८४॥

जैनेतरापि जनान् प्रतिबोधते स्म,
विद्यादयादमयमादिकसेवनाय ।
रोद्धु तयेन्द्रियविकारमनर्थकारम्,

पातु जिनेन्द्र कथित जिनधर्मतत्त्वम् ॥१८५॥
अन्याङ्गनापिशितमद्यनिशाशनानि,
द्यूत तमाखुमनृत व्यजहुश्च हिंसाम् ।
शीलव्रतोग्रमतपः परिसेवनार्थम्,
प्रायक्षिरे गुरुरुकृपामृतसिक्तलोकाः ॥१८६॥

भावार्थ—चरित्रनायकजी ने उपरोक्त सभी क्षेत्रों के जैन जैनतरों को विद्या, दम, यम, आदि प्राप्त करने तथा इन्द्रिय सम्बन्धी विकारों को त्याग देने का उपदेश दिया । और समझाया, कि विद्या, दम यम, आदिके द्वारा सद्गति प्राप्त होती है । और इन्द्रिय सम्बन्धी विकारों से अधोगति प्राप्त होती है। इस प्रकार जिन देव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के सार द्वारा, नर नारियों को सन्मार्ग पर लगाए ॥१८५॥ आपके सदुपदेश से अनेक प्राणियों ने पर स्त्री-गमन, मॉस-भक्षण, मदिरा-पान, रात्रि भोजन, द्यूतक्रीडा, तम्बाखू-सेवन, असत्य-भाषण और हिंसा करने का परित्याग किया तथा शीलव्रत पालन एवं तप की आराधना में तत्पर हुए ॥१८६॥

देशो यत्र पुरेषु येषु विहृतिं प्रातीतनच्छ्रीगुरु-
र्वाक्यैर्हृद्रुचितैर्मितैर्हितकरैर्जैनैरिवाकर्कशैः ।
चारित्रोपकृतिप्रदानविधिनाऽतोष्यत्पुरस्थान्जनान्,
जीवामारिरहर्निश व्रतकृतिर्दीनोद्धृतिभाविनाम् ॥१८७॥

भावार्थ—आपने जिस देश नगर या ग्राम में निवास किया, वहीं पर मधुर परिमित, रुचिकर, हितकारी और चारित्रोचित व्याख्यानों से श्रोता समाज के हृदय को आकर्षित करके अहिंसा मय पतितोद्धार का प्रचार किया ॥१८७॥

श्रीमान्सोहनलालजिज्जिनमताचार्योमुनीन्द्रास्तथा,
तद्व्याख्यानसमाश्रितानयपटु प्रभानुरुक्तजयणः ।
प्रयात्सोपि महामुदेन नगरं शोभाभि सभृषितं,
योगीन्द्रः स मुनि मरान्तममृतं गुज्रानवाला ततः ॥१८८॥

भावार्थ—वहाँ से विहार करके हमारे चरित्रनायकजी अमृतसर शहर में पधारे। वहाँ पर आपका श्रेष्ठ स्वागत हुआ। उस समय वहाँ पर श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज अपने शिष्य मण्डल सहित विराजमान् थे। वहाँ पर आचार्य महोदय तथा हमारे चरित्रनायकजी के व्याख्यान एक ही स्थान पर होते थे। आपके ओजस्वी व्याख्यानों की पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने बड़ी प्रशंसा की। तथा बड़ा प्रेम भाव प्रकट किया। वहाँ से विहार कर आप गुजरांवाला पधारे ॥१८८॥

मुन्नालालमुनीश्वरञ्च सुखद शिष्यैः शुभैः शोभितम्,
ग्रामेलिप्टतपोधनं मुनिवरं श्रीवालचन्द्रं तथा ।
यात्वा स्वभ्रमणे तदा च वजिराबादञ्च कुञ्जा ततो,
दानज्ञानधनाय दत्तममकृत्पात्राय मद्वृत्तये ॥१८९॥

शीलानां निचयस्तदा ममगमल्लालामुमां जेलमम्,
योगात्माशुचिरोहितासनगरीमालोक्य भव्योत्सवैः।
यागे वल्लरसैग्यदा प्रणमतः संप्राचितः श्रद्धया,
चान्ते रावलपिण्डिकाख्यनगरेऽत्रासीत्प्रतिष्ठाप्रभः॥१६०॥

भावार्थ—गुजराँवाला मे विद्वद्वर्य मुनि श्री १००८ श्रीमुन्नालाल जी महाराज तथा तपस्वी श्री १००५ श्री बालचन्द्रजी महाराज विराजमान् थे। अत चरित्रनायकजी उनकी सेवा मे पधारे और कई दिनों तक उनकी सेवा मे निवास किया। फिर उनकी आज्ञानुसार रावलपिंडी मे चातुर्मास करने का निश्चय करके, वहाँ से प्रस्थान कर दिया। इस प्रकार शीलादि गुणों से अलकृत योगनिष्ठ हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी महाराज गुजराँवाला से, लालमूसा, झेलम, रोहतास और वहरमेयदा को पावन करते । र रावलपिण्डी पधार॥१८९—१६०॥

योगाङ्काङ्कवसुन्धरापरिमिते संवत्सरे शोभने,
चातुर्मासमहोत्सवं समसिवच्छिष्यैः शुभैस्तत्स्थले।
जैनन्यायगिराविवादपदवीमारोप्य निर्घाटितः,
साध्वाचार्यनिधेः पथः शिथिलतः सम्यक्क्रियाधाम यः॥
वृद्धत्वेनजरद्गवं शमयुत माधीतनैकागमम्,
तत्रस्थ स्थविर ददर्शमुनिपं श्रीवंशिरामेण तम्।

पुनाति चित्तं मदनं लुनीते येनेह बोधं तमुशन्ति सन्तः ॥
यथा यथा ज्ञानबलेन जीवो जानाति तत्त्वं जिननाथदृष्टम् ।
तथा तथा धर्ममतिप्रसक्तः प्रजायते पापविनाशशक्तः ॥१९९
शक्योविजेतुं न मनः करीन्द्रोगन्तुं प्रवृत्तः प्रविहायमार्गम्
ज्ञानाङ्कुशेनात्र विना मनुष्यैर्विनाङ्कुशं मत्तमहाकरीव॥२००
दयाक्षमाशौचतपः प्रभावशीलप्रवृत्त्यादिकतोपभावैः ।
सत्यैश्च भावैः परिसेव्यते यत्तत्कर्मचारित्रपदं तनोति ॥२०१

भावार्थ—प्रश्नों के उत्तर देने में चतुर, योगनिष्ट श्री खूबचन्द्र जी म० ने यहाँ पर निर्मलचन्द्र के समान आह्लाद को देने वाले श्री जिनेश्वर भगवान कथित वाक्यों द्वारा ज्ञान और चारित्र का स्वरूप भली भाँति समझाया ॥१९८॥जिस वस्तु के द्वारा पर्याय गुण और तत्वों का बोध होता है। तथा इन्द्रिय और मन के द्वारा नाना

भूयोभिर्व्रतिभिर्बुधैः परिवृतोऽपानिप्रजाभिस्तदा,
मामोद मरसं सराग्हनन लोलामरालः समः ॥१६४॥

भावार्थ—वहाँ से विहार करके आप मार्ग में स्यालकोट नगर मे कुछ दिन ठहर कर, स्वर्गोपम काश्मीर देशस्थ अलौकिक शोभा-सम्पन्न जम्मू नगर मे पधारे। वहाँ पर उस समय विद्वद्वर्य मुनि श्री १००८ श्री मुन्नालालजी महाराज तथा तपस्वी श्री १००५ श्री बालचन्द जी महाराज विराजमान थे। अत आप भी वहाँ, उन की सेवा मे एक मास तक विराजे। जिस प्रकार हंस अनेक सरोवरों को अपनी लीलामय स्थिति से अलकृत करता हुआ जाता है, उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचदजी महाराज मुनियों के वृन्द सहित नित्य प्रति विहार करते हुए अनेक गावों तथा पुर वासियों को अपने सदुपदेश द्वारा पवित्र करते हुए, पुन उसी मार्ग से लाहौर पधारे ॥१६३-१६४॥

पश्नोत्तरे चारुचरित्रयोगी, ज्ञानस्वरूप शुचिद चरित्रम् ।
विनिर्मलैः पार्वणचन्द्रकान्तैः मस्फूर्च्छतिश्रीप्रभुवीरवाक्यैः
अनेकपर्यायगुणैरुपेत विलोक्यते येन समस्ततत्त्वम् ।
तदिन्द्रियानिन्द्रियभेदभिन्नं ज्ञानं जिनेन्द्रै कथित हिताय
रत्नत्रयी रक्षति येन जीवो विरज्यतेऽनन्तशरीरसौख्यात् ।
रुणद्धि पापं कुरुते विशुद्धिं ज्ञान तदर्थं सकलार्थसिद्धिः ॥
क्रोध धुनीते विदधाति शातिं तनोति मैत्रीं विनिहन्ति मोहम

विराजमान थे। उनसे हमारे चरित्रनायकजी शुद्ध हृदय से प्रेम पूर्वक मिले। और रोहतक श्री संघ के विशेष आग्रह से कुछ दिन वहाँ ठहरे। जब आप वहाँ से अन्यत्र पधारने लगे, तो पुनः वहाँ के भाइयों द्वारा ठहरने की आग्रह भरी विनती होने पर, कुछ दिन और भी वहाँ ठहरे। वहाँ पर दिल्ली का श्री संघ मुनि श्री मायारामजी महाराज की सेवा में, चातुर्मास की विनती करने के लिए उपस्थित हुआ। श्रीमान मुनि मायारामजी म० ने हमारे चरित्रनायकजी के सारगर्भित व्याख्यान की दिल्ली श्री संघ के समक्ष भूरि-भूरि प्रशंसा की। और स्वयं विशेष रूप से यह फरमाया, कि अब की बार मुनि श्री सुखचन्द्रजी म० का चातुर्मास देहली में होना चाहिए क्योंकि आपके चातुर्मास में यहाँ पर बहुत ही धर्मोद्योत हो सकता है। इस कथन को सुन कर दिल्ली के श्री संघ ने चातुर्मास के लिए चरित्रनायकजी से आग्रह पूर्वक विनती की। अतः देहली संघ के आग्रह को आप टाल नहीं सके और संवत् १६६६ का चातुर्मास दिल्ली में करना स्वीकार किया ॥२०३॥

व्यातीद्दिल्लिपुरे ततोमुनिवरः सद्भाग्रहेणोज्ज्वल-
श्चातुर्मासमहोत्सवं ग्रहरसद्वारायनीवत्सरे।
निष्कामोऽपि समिष्टमुक्तिवनिताकाङ्क्षी सदा संयतः,
सत्याराधितमानसोवृतवृषोऽप्यन्यैर्प्रियोऽप्यप्रियः ॥२०४॥
केश्चिच्चन्दनापमानमनघं दत्तं कवीन्द्रैः शुभो,

ज्यों यह जीव ज्ञान-बल से भगवान वीर प्रभु द्वारा भाषित तत्व को जानता है, त्यों-त्यों वह पाप का विनाश करता हुआ, धार्मिक भावों को प्राप्त करता है ॥१९९॥ जिस प्रकार मदोन्मत हाथी बिना अंकुश के वशीभूत नहीं होता, उसी प्रकार यह मदोन्मत्त मन रूपी हस्ती भी ज्ञान रूपी अंकुश के बिना कभी वशीभूत नहीं हो सकता है ॥२००॥ दया, क्षमा, शौच, तप, शील, सन्तोष, एवं सत्य आदि से जो यथोचित क्रिया की जाती है, उसी को चारित्र कहते हैं।

लाहोराद् मुनिसत्तमः समचरद्ग्रामे कसूराभिधे,
तत्स्थानाच्च फरीदकोटमगमत्कोटाकपूरंमण्डिकाम् ।
रामामण्डिमयात्स्वकीयपथगं यज्जैतुमंडीं तथा,
रोहानापुरजिन्दमेवमनुपे प्रायाद्भटींडापुरे ॥२०२॥
एवं रोहतकं समेत्य निगमं श्रेष्ठिस्थ तत्र स्थितम्,
साध्वाचारविभूषितं मुनिवरं श्रीमन्मयारामकम् ।
सप्रेमामृतचक्षुषा सुमनसा तं शिष्यवृन्दान्वितम्,
सोऽमेलिष्ट चकार नामसुचितं तत्सङ्घहार्दाग्रहैः ॥२०३॥

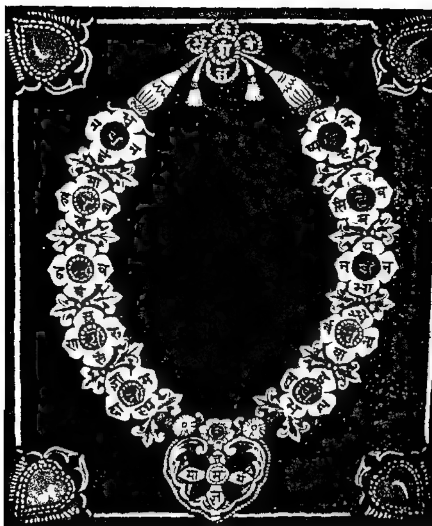
भावार्थ—तदन्तर लाहौर से विहार करके कसूर, फरीदकोट, भटिंडा और जींद आदि अनेक नगरों तथा ग्रामों को अपने सदुपदेश से पवित्र करते हुए, मुनि श्री सूरचन्द्र जी महाराज रोहतक पधारे। रोहतक में पजाब-देश पावन कर्ता, कृपालु, वैराग्य मूर्ति श्रीमान् मुनि मायारामजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित

विराजमान थे। उनसे हमारे चरित्रनायकजी शुद्ध हृदय से प्रेम पूर्वक मिले। और रोहतक श्री संघ के विशेष आग्रह से कुछ दिन वहाँ ठहरे। जब आप वहाँ से अन्यत्र पधारने लगे, तो पुन वहाँ के भाइयों द्वारा ठहरने की आग्रह भरी विनती होने पर, कुछ दिन और भी वहाँ ठहरे। यहाँ पर दिल्ली का श्री संघ, मुनि श्री मायारामजी महाराज की सेवा में, चातुर्मास की विनती करने के लिए उपस्थित हुआ। श्रीमान् मुनि मायारामजी म० ने हमारे चरित्रनायकजी के सारगर्भित व्याख्यान की दिल्ली श्री संघ के समक्ष भूरि भूरि प्रशंसा की। और स्वयं विशेष रूप से यह फरमाया, कि अब का बार मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० का चातुर्मास देहली में होना चाहिए क्योंकि आपके चातुर्मास में यहाँ पर बहुत ही धर्मोद्योत हो सकता है। इस कथन को सुन कर दिल्ली के श्री संघ ने चातुर्मास के लिए चरित्रनायकजी से आग्रह पूर्वक विनती की। अतः देहली संघ के आग्रह को आप टाल नहीं सके और संवत् १६६६ का चातुर्मास दिल्ली में करना स्वीकार किया ॥२०३॥

ख्यातीदिल्लिपुरे ततोमुनिवरः सद्वाग्रहेणोज्वल-
श्चातुर्मासमहोत्सवं ग्रहरसद्वारानवीत्सरे।
निष्कामोऽपि समिष्टमुक्तिवनिताक्राटचो सदा सयतः,
सत्याराधितमानसोऽतद्ग्रहोऽप्यर्च्यप्रियोऽप्यप्रियः ॥२०४॥
केश्चिद्वद्दनापमानमनघ दत्त कवीन्द्रः शमी,

विद्वद्वृन्दमनः सरोजमकरोद्वाक्यामृतैः फुल्लितम् ।
श्रीमत्स्थानकवासिधर्मतिलकोवादीभपञ्चाननः,
प्रास्फूर्जेज्जिनचारुधर्मविजयश्रीर्वैजयन्ती तदा ॥२०५॥
मालव्य शुभमेदपाटनिगमं पातुं मरालां ययौ,
बोधित्वा शुचिकाण्डसाजनपदं सौनां नवग्राहिकाम् ।
एवं ब्हादरपुःस्थितान् जिनगमान् सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः,
कामक्रोधमदादिकैश्च रहितः प्रायाद्यतीशाग्रणीः ॥२०६॥

भावार्थ—फिर संवत् १९६९ का चातुर्मास श्री संघ के अत्याग्रह से आपने देहली में किया। वहाँ पर चरित्रनायकजी निष्काम होते हुए भी मुक्ति कामनी के इच्छुक बने रहे। तथा सत्यारोपित मन वाले होते हुए भी आपने अपने को सत्यावादी की उपमा से प्रसिद्ध करना योग्य नहीं समझा। इसी प्रकार पूजनीय होते हुए भी आपको अपनी स्तुति अप्रिय मालूम होती थी। यों आप देहली में उत्तरोत्तर अधिकाधिक शोभा को प्राप्त होने लगे ॥२०४॥ वहाँ पर आपने अपने मुख-चन्द्र से वाक्य रूपी चन्द्रिका को छिटका कर विद्वानों के हृदय रूपी कुमोदनी को विकसित किया। यों स्थानकवासी समाज के मुकुट मणि, चर्चावादी रूपी हस्तियों के समूह में ऐरावत हाथी के समान मुनि श्री खूबचन्द्रजी महाराज ने जैन धर्म की ध्वजा को फहराया॥२०५॥ इस प्रकार काम क्रोधादि से रहित होकर आपने देहली का चातुर्मास पूर्ण किया। और फिर वहाँ से महरौली, झाडसा, सोना,



Calcutta Art Press 1

नागानों तथा बहादुरपुर आदि गाँवों में जैन धर्म का प्रचार करते हुए आपने मालवा और मेवाड़ की तरफ विहार किया ॥२०६॥

अलवरपुरजैनं सम्प्रदाय स्वकीयम्,
जिननिभुमुखवाचाऽपिप्रयन्छ्रोतृवृन्दम् ।
सकलजिनपतिभ्यः पावनेभ्योनितुत्य,
मुनिपतिरगितु योऽकरोत्स्तधर्मप्रभावनम् ॥२०७

भावार्थ—विहार करते हुए आपका शुभागमन अलवर नगर में हुआ। आपके पावन दर्शनों से अलवर के जैन समाज के आबाल वृद्ध नर नारियों का हृदय सागर आनन्द की तरंगों से उमड़ पड़ा। वहाँ से फिर आपने अपने परम पूज्य तीर्थंकरों को प्रणाम करके धर्म प्रभावना के लिए आगे को प्रस्थान किया॥२०७

ढूंढारस्थितजैनधर्मनितरान् सतुष्यहर्षान्वितः,
प्रायाच्छ्रीजयपूःस्थले सममिलत्तत्र स्थित योगिनम् ।
सम्प्रीयप्रणयेन शुभ्रविनयाचार्यं सुचन्द्रान्वितम्,
एव प्रज्ञाविभूषणश्च शिवजीरामञ्च सवेगिनम् ॥२०८॥

भावार्थ—ढूँढार देश निवासी जैन धर्मावलम्बियों को सतुष्ट करते हुए आपने जयपुर की भूमि को पावन किया । इस समय वहाँ पर श्री मज्जैनाचार्य श्री विनयचन्द्रजी म० विराजमान थे । अत आपने उनके दर्शन किये। वे भी चरित्रनायकजी से मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हुए इसी प्रकार जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सवेगी साधु श्री शिवजीरामजी भी उस समय वहाँ पर विराजमान थे। अत वे भी आप से मिल कर परम प्रसन्न हुए ॥२०८॥

क्रमाज्जैनक्षेत्रे सततमुपदेशामृतजलैः
समारुचद्धर्मक्षितिरुहमुदग्रं फलयुतम् ॥२११॥

भावार्थ—जयपुर से किशनगढ होते हुए, आपने अजमेर श्री संघ के आग्रह से प्रेरित हो कर, अजर अमर पुरी अजमेर की भूमि को पावन किया। वहाँ पर आपने जन्म मृत्यु के भय को निवारण करने वाली श्री जिनेन्द्रवाणी के अनुसार काम क्रोधादि रिपुओं पर विजय प्राप्त करके प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश दिया ॥२०९॥ वहाँ से नसीराबाद होते हुए विजयनगर पधारे। वहाँ पर पण्डित रत्न मुनि श्री देवीलाल जी म० अपने शिष्य मण्डल सहित विराजमान् थे। आपने भी वहाँ एक मास ठहर कर जैन तथा जनेतरो को अपने व्याख्यानामृत से तृप्त किये। फिर वहाँ से भिणाय पधारे। और वहा की जनता को उपदेश प्रदान किया। यों जिन धर्म-क्षेत्र मे जिन धर्म रूपी कल्पवृक्ष को उपदेश रूपी जल द्वारा सिंचित करके उसे फल से परिपूर्ण बनाया ॥२१०-२११॥

पश्चाद्बांधनवाडाञ्च रूपाहेलीञ्च लाम्बिकाम् ।
मायडला भीलवाडाञ्च समापद्धर्मबोधकः ॥२१२॥
श्रुत्वा ज्वाहरलालस्य नन्दलालादिभिः सह ।
स्थितिं निम्बडाग्रामेऽयाचदा गुरुमीक्षितुम् ॥२१३॥

भावार्थ—भिणाय से विहार करके आपने क्रमश बान्दनवाडा

चतुर्थ परिच्छेद

मालवा और मेवाड़ में धर्म-प्रचार

ततोऽसौ योगीन्द्रः शिवनगरमायात्सपदि तत्,
स्वज्ञानात् सद्धर्मैः प्रपगत्मैर्धर्मनिचयः ।
स्वकीयोपाध्यायान् हनय हनय प्राणिषु दयाम्,
ततोऽप्यागात् श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तवचनैः ॥२०९॥
नरसिंहदासाख्यः विज्ञवरो शास्त्रनिपुणः,
समायात्तत्रागत् मुनिसम्पूज्यः पण्डितवराः ।
बुधाः देवीदासाः कृपाचन्द्राद्यैः जनवराः,
तथा सर्वे जैने मिलनगणाश्चारजनान् ॥२१०॥
दिव्यमेदं मालवे विविधमेवाड़श्च मुनिवरं-
निनार्य सम्भाव्य प्रमुदितमना धर्ममृषण् ।

क्रमाज्जैनक्षेत्रे सततमुपदेशामृतजलैः
समारुन्नद्धर्मक्षितिरुहमुदग्रं फलयुतम् ॥२११॥

भावार्थ—जयपुर से किशनगढ होते हुए, आपने अजमेर श्री संघ के आग्रह से प्रेरित हो कर, अजर अमर-पुरी अजमेर की भूमि को पावन किया। वहाँ पर आपने जन्म मृत्यु के भय को निवारण करने वाली श्री जिनेन्द्रवाणी के अनुसार काम क्रोधादि रिपुओं पर विजय प्राप्त करके प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश दिया ॥२०६॥ वहाँ से नसीराबाद होते हुए विजयनगर पधारे। वहाँ पर पण्डित रत्न मुनि श्री देवीलाल जी म० अपने शिष्य-मण्डल सहित विराजमान् थे। आपने भी वहाँ एक मास ठहर कर जैन तथा जनेतरों को अपने व्याख्यानामृत से तृप्त किये। फिर वहाँ से भिणाय पधारे। और वहां की जनता को उपदेश प्रदान किया। यों जिन धर्म-क्षेत्र में जिन धर्म रूपी कल्पवृक्ष को उपदेश रूपी जल द्वारा सिंचित करके उसे फल से परिपूर्ण बनाया ॥२१०-२११॥

पश्चाद्बाधनवाडाञ्च रूपाहेलीञ्च लाम्बिकाम् ।
माण्डला भीलवाडाञ्च समार्पीद्धर्मबोधकः ॥२१२॥
श्रुत्वा जवाहरलालस्य नन्दलालादिभिः सह ।
स्थितिं निम्बाहाग्रामेऽयात्तदा गुरुमीक्षितुम् ॥२१३॥

भावार्थ—भिणाय से विहार करके आपने क्रमशः बान्दनवाडा

रूपाहेली, लाम्बिया, मॉडल और भीलवाड़ा नामक क्षेत्रों को पावन किया ॥२१२॥ वहाँ आपको यह हर्ष समाचार प्राप्त हुए, कि "पूज्य श्री जवाहिरलाल जी म०, स्थविर पद-विभूषित, शास्त्र-विशारद, पूज्य गुरुदेव मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज आदि मुनिवरों सहित निम्बाहेड़ा में विराजमान हैं।" इस शुभ समाचार को पाकर आप अपने पाँच शिष्यों सहित उनके दर्शनार्थ निम्बाहेड़ा की ओर पधारे ॥२१३॥

मुनीन्द्रसासारिकपितृभक्त्या निम्बाहडासङ्घशुभाग्रहेण ।
नभोश्वखएडान्वितसंमितेऽब्दे व्याती चतुर्मासमुदग्रयोगी ।

भावार्थ—अपनी जन्म भूमि निम्बाहेड़ा में पहुँच कर विक्रम सम्वत् १६७० का चातुर्मास आपने अपने सांसारिक पिता जी और श्री संघ के विशेष आग्रह से तथा गुरु जी की आज्ञा से प्रेरित हो कर, वहीं पर किया ॥२१४॥

चातुर्माससमाप्तिसज्जिनगिरा हित्वा च निम्बाहडाम्,
पर्याटीद्विविधस्थलेषु समयाच्छ्रीमन्दसौरे पुरे ।
तत्स्थाने मुनिसत्तमाः समभुवन् तत्वज्ञविद्याप्रभ,
श्रीमज्जवाहरलालजित्सुचरितः कल्याणकन्दाम्बुदः ॥२१५
चञ्चच्छारदचन्द्रचारुवदन श्रेयोविनिर्यद्वचो,
वादीन्द्रद्विपकेशरीशुचिमतिः श्रीनन्दलालोगुरुः ।
एवं सत्कविताप्रसूनसुरभिप्रीतोमुनीन्द्रस्तथा,

रागं करोति शिथिलीकुरुते शरीरम् ।
धर्मं हिनस्ति वचनं विदधात्यवाच्य,
कोपोग्रहोरतिपतेर्मदिरामदश्च ॥२१६॥
भ्रूभङ्गभंगुरमुखोविकरालरूपो-
रक्तेक्षणोदशनपीडितदन्तवासाः ।
त्रासं गतोऽतिमनुजोजननिन्द्यवेषः,
क्रोधेन कम्पिततनुर्भुविराक्षसो वा ॥२२६॥
वैरं निरर्थयति सख्यमपाकरोति,
रूपं निरूपयति निन्द्यमतिं तनोति ।
दौर्भाग्यमानयति शातयतेचकीर्तिं,
रोषोऽत्र रोषसदृशो नहि शत्रुरस्ति ॥२२१॥
वित्ताशयो खनति भूमितलं सलम्पो-
धातून्गिरेर्धमति धावति भूमिपाग्रे ।
देशान्तराणि विविधानि विगाहते च,
पुण्यं विना न च नरो लभते स तृप्तिम् ॥२२
वर्धस्व जीव जय नन्द विभो ! चिरं,
त्वमित्यादिचाटुवचनानि विभाषमाणः।
दीनाननो मलिननिन्दितरूपधारी,
लोभाकुलो वितनुते सधनस्य सेवाम् ॥२२३॥
जीवान्निहन्ति विविधं वितथं ब्रवीति,

स्तेय तनोति भजते वनिता परस्य ।
गृह्णाति दुःखजननं धनमुग्रटोप,
लोभग्रहस्य वशवर्तितया मनुष्यः ॥२२४॥
निःशेषलोकवनदाहनिधौ समर्थं,
लोभानल निखिलतापकर ज्वलन्तम् ।
ज्ञानाम्बुवाहजनितेन विवेकजीवाः,
सन्तोषदिव्यसलिलेन शम नयन्ते ॥२२५॥
या छेदभेददमनाङ्कनदाहदोह-
वातातपान्नजलरोधवधादिदोषाम्,
मायावशेनमनुजोजननिन्दनीया,
तिर्यग्गतिं व्रजति तामतिदुःखरूपाम् ॥२२६॥
यत्र प्रियाप्रियवियोगसमागमान्य-
प्रेष्यत्वधान्यधनबान्धवहीनतात्वै ।
दुःख प्रयाति विविधं मनसाप्यसह्यं,
तं मर्त्यवासमधितिष्ठति माययाङ्गी ॥२२७॥
कोपादिकान् रिपुगणानगुरुबोधशस्त्रै-
र्धर्माभिमर्दसुपटे विनिहत्यमर्त्यः ।
ज्ञानप्लवेन तरतीह भवार्णव सः,
वीरप्रभूक्तपरम पदमालिनाति ॥२२८

भावार्थ—क्रोधादि कषायों के निवारणार्थ जैन तथा जैनेतर जनता ने, मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० से उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। तब मुनि श्री ने मनुष्यों को अधोगति में ले जाने वाले क्रोधादि कषायों का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया ॥२१८॥ क्रोध धैर्य को नष्ट कर डालता है। क्षण भर में बुद्धिको बिगाड़ देता है। अपने आपे को भुला देता है। शरीर को शिथिल कर देता है। धर्म को ध्वंस कर देता है। क्रोध में वाच्य और अवाच्य का विचार नहीं रहता, क्रोध एक प्रकार की मदिरा का मद है ॥२१९॥ क्रोधी मनुष्य की भृकुटि सदैव चढ़ी रहती है। मुखाकृति भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। नेत्र लाल लाल हो जाते हैं। वह अपने प्रकम्पित शरीर द्वारा दाँत पीसता हुआ लोकनिन्दा का पात्र बनता है। इस प्रकार क्रोधी मनुष्य एक राक्षस के समान त्रासदायक मालूम पड़ने लगता है ॥२२०॥ क्रोध, मैत्रीभावना को नष्ट-भ्रष्ट करके वैर भावना को उत्पन्न करने वाला तथा घृणित विचारों का प्रचारक है। क्रोध, मनुष्य को कष्ट में डाल कर उसके वास्तविक स्वरूप को विकृत कर डालता है। तथा कीर्ति को भी नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान इस संसार में दूसरा कोई शत्रु नहीं है ॥२२१॥ लोभ के वशीभूत होकर धन की आशा से प्राणी भूमि को खोदते हैं। पर्वत की धातुओं को फूँकते हैं। राजाओं के आगे दौड़ते हैं। अनेक देशों की खाक छानते फिरते हैं। किंतु उन्हें पुण्य के बिना, कहीं पर भी सन्तोष

प्राप्त नहीं होता है ॥२२२॥ लोभी पुरुष के लक्षण यह है, कि वे स्वार्थ जीव निन्दित वेष को धारण करके धनिक पुरुषों की सेवा में रहते हैं। और दीनता पूर्वक उनकी चापलूसी करते हैं, कि हे स्वामिन ! आप सद्बुद्धि को प्राप्त हों। आप चिरकाल तक जीवित रहें और आनन्द को प्राप्त हों। इत्यादि ॥२२३॥ लोभ के आधीन होकर, यह प्राणी अनेक प्रकार के जीवों का घात करता है। असत्य भाषण, चोरी, और पर स्त्री सेवन करता है। तथा प्राणनाशक दुःख के उत्पन्न करने वाले धन को ग्रहण करता है ॥२२४॥ विचारशील पुरुष इस लोभ रूपी अग्नि को, जो कि सम्पूर्ण लोक रूपी वन को दग्ध करने में समर्थ है। तथा जो मन को जला देने वाली है, अपने ज्ञान रूपी बादल द्वारा सतोष रूपी दिव्य जल की वर्षा से बुझाते है ॥२२५॥ माया के, आधीन होकर यह जीव छेदन, भेदन, अकन दाहन, घात, धूप और अन्नाभाव आदि अनेक कष्टों को प्रदान करने वाली पशु गति को प्राप्त करता है ॥ २२६ ॥ माया के कारण मनुष्य लोक मे भी प्रिय वियोग, अप्रिय सयोग तृष्णा तथा धन धान्य का अभाव आदि अनेक असह्य दुःख प्राप्त होते है ॥ २२७ ॥ जो मनुष्य गुरु बोध रूपी अस्त्र शस्त्रों द्वारा सुसज्जित होकर धर्म रूपी रण क्षेत्र मे क्रोधादि शत्रुओं को पराजित करके ज्ञान रूपी नौका से ससार रूपी समुद्र को पार करते है। वे ही मनुष्य वीर प्रभु द्वारा भाषित परम पद मोक्ष को प्राप्त होते है ॥२२८॥

निपतितो वदते धरणीतले, नमति सर्वजनेन निनिन्द्यते ।
श्वशिशुभिर्वदनं परिचुम्ब्यते, वतसुरासुरतस्य निमूत्र्यते ॥
भवति मद्यवशेन मनोभवः, सकलदोषकरोऽत्र शरीरिणः ।
भजति तेन विकारमनेकधा, गुणयुतेन सुरा परित्यज्यते
पिबति यो मदिरा मथलोलुपः श्रयति दुर्गतिदुःखममौजनः
इति विचिन्त्य महामतयस्त्रिधा परिहरन्ति सदा मदिरारसम्

भावार्थ—मदिरा पीने वाला मनुष्य, पृथ्वी पर गिर कर अट-सट बकवाद करता हुआ वमन करता है। अत जगत् जनता द्वारा वह निंदा का पात्र होता है। कुत्ते उसके मुख को चाटते हैं। और अपने अपवित्र मूत्र द्वारा उसको प्रक्षालित करते है ॥२२९॥ मदिरा पान से कामदेव की उत्पत्ति होती है। और शरीर-धारियों के लिए यह कामदेव सब प्रकार के दोषों की जड है। क्योंकि इसी से शरीर मे नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। गुणवान् मनुष्य, मदिरा पान को त्याज्य समझते हैं ॥२३०॥ जो मनुष्य मद्य पीते हैं, वे दुर्गति के महान् भयकर दुखो के अधिकारी होत हैं। इसलिए विचारशील व्यक्ति मदिरा को कभी नहीं पीते हैं ॥२३१॥

मासाशनाज्जीववधानुमोदस्ततो भवेत्पापमनन्तमुग्रम् ।
ततोव्रजेद् र्गतिमुग्रदोषा मत्वेति मास परिवर्जनीयम् ॥२३२
मासाशिनो नास्तिदयासुभाजादया विनानास्तिजनस्य पुण्यम्
पुण्य विना याति दुरन्तदुःखं ममारकान्तारमलभ्य पारम्

मांसाशने मोदति मांसभक्षी जानाति नो कर्मविचित्रभावम्
अश्नाम्यहं प्राणिनमत्रमोदैः कालान्तरेऽशिष्यति जीवमासः

भावार्थ--जो जीव मांस-भक्षण करने में आनंद मानते हैं। वे महान् पाप सम्पादन करते हैं। और अन्त में नरक गति में जाकर अनन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं। ऐसा समझ कर मांस का भक्षण कभी नहीं करना चाहिए।।२३।। मांस भक्षियों के हृदयों में तनिक भी दया भाव उत्पन्न नहीं होता है। और दया के बिना पुण्य की प्राप्ति नहीं होती। पुण्य के बिना यह जीव इस संसार रूपी भीषण वन में भ्रमण करता हुआ भयानक दुःखों का शिकार होता है। मांस भक्षी जीव, मांस भक्षण के समय महान आनन्द मानता है। किन्तु कर्म की विचित्र गति को वह नहीं जानता है, कि आज मैं जिन को आनन्द पूर्वक भक्षण कर रहा हूँ। कालांतर में वेही मुझ को भक्षण करेंगे। मांस शब्द का व्युत्पत्यर्थ है 'मां' अर्थात् 'मुझ को' और 'स' अर्थात 'वह'। तात्पर्य इसका यह है कि जिस प्राणी के मांस को आज मैं खा रहा हूँ, कालांतर में वही प्राणी मुझ को भी खावेगा।।२४।।

यानि कानिचिदनर्थवीचिके, जन्मसागरजले निमज्जताम्।
सन्ति दुःखनिलयानि देहिनां,तानि चाचरमणेन निश्चितम्
सद्गतीचशमशर्मवर्जिता, धर्मकामनतोवहिष्कृताः।

द्यूतदोषमतिनापि चेतनाः के न दोषमुपचिन्वते जनाः॥२३६
साधुबन्धुपितृमातृसज्जनान्मन्यते न तनुते मलं कुले ।
द्यूतरोपितमनानिरस्तधीःशुभ्रधाममुपयात्यमो यतः ॥२३७॥
द्यूतनाशितसमस्त भूतिको, बम्भ्रमीति सकलां भुवनरः ।
जीर्णवस्त्रकृतदेहसंहतिर्मस्तकाहितकरः क्षुधातुरः ॥२३८॥
याचते पटति याति दीनता,लज्जते न कुरुते विडम्बनाम् ।
सेवते नमति याति दासता,द्यूतसेवनपरोनरोऽधमः ॥२३९॥
शीलवृत्तगुणधर्मरक्षण, स्वर्गमोक्षसुखदानपेशलम् ।
दुर्वचाक्षरमयं न तत्ततः सेव्यते सकलदोषकारणम् ॥२४०॥

भावार्थ—अनर्थरूपी लहरों से व्याप्त, संसार-समुद्र के जल में डूबते हुए प्राणियों को जो भी दुःख प्राप्त होते हैं। वे सब जुआ खेलने से मिलते हैं। यह ध्रुव सत्य है ॥२३५॥ जुआरियों को सज्जन, बन्धु, माता, पिता, आदि किसी भी व्यक्ति की प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं रहता है। वे अपने उज्वल वंश पर कलंक का टीका चढ़ाते हैं। उनकी सद्यता, पवित्रता, शान्ति और सुख प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। द्यूत क्रीडा-जनित, दूषित बुद्धि के कारण उनका धन,धर्म और बुद्धि विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार सुख बुद्धि विहीन होकर जुआरी लोग किस दोष को प्राप्त नहीं करते हैं? अर्थात् सब ही प्रकार के दोष उनके हृदय में निवास कर लेते हैं। और अन्त में वे बुद्धि रहित नरक गति को प्राप्त करके

दुःख भोगते रहते हैं ॥२३६-२३७॥ जुआरी लोग जुआ में अपनी समस्त सम्पत्ति नष्ट करके संसार में दर-दर के भिखारी होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। फिर वे बुभुक्षित फटे वस्त्र धारण करते हुए, सिर पर हाथ धर कर, रोते और पछताते हैं ॥२३८॥ जुआरी पुरुष नीचवृत्ति द्वारा उदर पूर्ति करते हैं। अर्थात् वे नीच व्यक्तियों की सेवा करते हैं, उनके हाथ जोड़ते हैं, उनके साथ साथ फिर कर उनसे भीख माँगते हैं। और यहाँ तक, कि वे दास वृत्ति को भी धारण कर लेते हैं। इस प्रकार उनके हृदय से लज्जा पलायन हो जाती है। और वे महान् विडम्बना को प्राप्त होते हैं ॥२३९॥ शील व्रत, गुण और धर्म आदि जो कि स्वर्ग और मोक्ष आदि अखण्ड सुख के देने वाले हैं। उनकी रक्षा के लिए पुरुष को सकल दोष के मूल कारण जुआ का सदा सर्वदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए ॥२४०॥

द्यूतेर्नलः कौरवपाण्डवाश्च, परस्त्रिया रावण उग्रभागी।
मद्येन सर्वे यदुवंशजाताः याताः क्षयं चक्रनृपश्च मांसैः॥
गुरूपदेशामृतसक्तचित्ताः द्यूतं सुरामामिषभक्षणञ्च।
संतत्यजुश्चैव तमासुपत्रमप्यन्त्यजाःपालकनापिताश्च॥२४२

भावार्थ—द्यूतक्रीडा के कारण महाराजा नल तथा कौरव-पाण्डव जैसे प्रख्यात शक्तिशाली यदुवंशियों को भी कष्ट उठाना पड़ा। पर स्त्री रमन से रावण जैसा प्रतापी राजा भी सर्वनाश को प्राप्त हुआ। मद्य-पान के कारण समस्त यदुवंशी विनाश को प्राप्त

। और माँस-भक्षण करने से राजा वंक नरक गति में उत्पन्न
॥२४१॥ इस प्रकार गुरु श्री सूरचन्द जी म० के उपदेशामृत
सिंचित गडरिये, नाई आदि मनुष्यों ने द्यूत क्रीड़ा, मदिरा
न, माँस भक्षण और तम्बाखू सेवन आदि दुर्व्यसनों का सदा-
वदा के लिए परित्याग कर दिया ॥२४२॥

ातुर्मासमहोत्सवं सुमनसाऽधीत्यापि यज्ञावरा,
त्स्थानाद्गुरुपादशिष्टिवशगः पातुञ्चतुर्मासिकम् ।
ङ्क्वीत्सोऽप्यजमेरमापचरितोऽह्न विक्रमीये शुभे,
त्राश्वाङ्कवसुन्धरापरिमिते मासे शुचौ कष्टतः ॥२४३॥

भावार्थ—इस प्रकार आप कोटे का चातुर्मास समाप्त करके
वरा पधारे। और फिर अपने पूजनीय गुरुवर्य श्री जी की
ाज्ञानुसार आप ग्रीष्म कालीन भीषण आतप को सहन करते
ए नि संवत् १६७२ के चातुर्मासार्थ अजमेर में पहुँच गये ॥२४३॥

ासेविष्टगुलाबचन्द्रमनिशं रोगान्वितं सद्यतिम्—
र्वैः शिष्यगणैस्ततः समपिदत्स्वास्थ्यं गुलाबोमुनिः ।
र्ज्जे दीपकमालिकासुदिवसे भीष्मामयैः पीडितः,
ोमज्जवाहरलालजीमुनिवरोऽधचापवासं व्रतम् ॥२४४॥
ीस्थानाङ्गसुसूत्रदीप्तकथिते श्रीपञ्चमीये स्थले,
द्देशद्वितयानुगा-मुनिवरो हित्वाऽजमेर पुरम्,

प्रायाच्छ्रीगुरुदर्शनाय तदपि स्वर्गं गुरुः प्रागमत्,
षष्ठ्यां कार्तिकमासिके सिततिथौ शुक्रे च मध्याह्निके ॥२४५

भावार्थ—अजमेर चातुर्मास के लिए विहार करते समय, आपने अपने शिष्य-मण्डल सहित रुग्ण-शय्या शायी मुनि श्री गुलाबचन्द जी महाराज को औषधोपचार द्वारा स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया। उसी वर्ष चातुर्मास में मुनि श्री जवाहिरलालजी म का स्वास्थ्य मन्दसौर में अत्यन्त खराब हो गया। अतः उन्होंने दीपमालिका के दिन संथारा (अनशन व्रत) धारण कर लिया। इस समाचार को पाकर, हमारे चरित्रनायक धैर्यवान् मुनि श्री खूबचन्दजी म० ने, चातुर्मास में ही श्री स्थानाङ्ग सूत्र के पाँचवे स्थान के द्वितीय उद्देशानुसार, गुरुवर्य श्री जी के दर्शनार्थ, मन्दसौर की तरफ प्रस्थान कर दिया। परन्तु गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजीम का देहावसान तो कार्तिक शुक्ला ६ शुक्रवार के दिन ही हो चुका था।

स्वर्गावासमसमाचारं निजगुरोः श्रीभीलवाडापुरे,
श्रुत्वोपासदिनानि खेदसहितः प्रायात्तु चित्तोडकम् ।
तस्माच्छ्रीयुतदेविलालमुनिना कृत्वा विहारं पुनः,
सम्प्राप्योदयकं पुरञ्च मुनिना प्रायात्पुनः व्यावरम् ॥२४६

भावार्थ—गुरुवर्य श्री जी के स्वर्गवास के समाचार हमारे चरित्रनायक जी को मार्ग में अर्थात् भीलवाडा में ही प्राप्त हो गये। तब आपने खेद पूर्वक प्रकट किया कि देखा मैं गुरुदेव की

अन्तिम सेवा भी सम्पादन नहीं कर सका । आप कुछ दिन भीलवाड़ा में ही ठहरे । और फिर कुछ ही दिनों के पश्चात चित्तौड़गढ की तर्फ विहार किया । फिर वहाँ से पंडित मुनि श्री देवीलालजी म० के साथ ही साथ उदयपुर नगर की भूमि को पावन करते हुए, आपने ब्यावर नगर में पदार्पण किया ॥२४६॥

नेत्राश्वाङ्क महीमिते मुनिगणः श्रीनन्दलालादयः,
पुण्ये जोधपुरे तदा समभवन् सप्तोत्तराविंशतिः ।
धन्वस्योगुणघोटकाङ्कुमिते वर्षादिनानाङ्कते,
प्रार्थायै शुभसादडीजनवहः श्रीनन्दलालं ययौ ॥२४७॥
वैहर्षं नितरं तदा समभवत् संस्थानके वासिनाम्,
जैननाना जिनमन्दिर सुमहता येनावरोधः पथि ।
साधूना गमनं तदा न सहसा कष्टं समीक्ष्याजनि,
वैसंवादयुतेऽपि तत्र समये श्रीखूबचन्द्रं मुनिम् ॥२४८॥
नेतु मासचतुष्टय गुरुवरः पिप्रेप शान्तेः निधिम्,
त्यक्त्वा तं मुनिपं यतो नहिपरः साधुस्तदा सोऽभवत् ।
यद्वर्षा समयस्य निर्णयपरोदेशो न वाजायत,
मूर्ध्न्यादेशमयं निधाय सुगुरोः संशिश्रिये सादडीम् ॥२४९॥
व्याख्यानं जनशान्ति भावकभरं कृत्वा मुनिर्योगिराट्,
मुद्रा चेतसि संददे रसजुषां शान्त्याः गुणाना नृणाम् ।



श्रीमान् स्वर्गीय हिज हाईनेस सर जयसिंह जी साहब बहादुर, अलवर।

श्रद्धा संप्रदधे जनाः उभयतः सवेगिनः स्थानकाः,
व्याख्याने समुपाययुश्च मनुजाः वैरेण दूरीकृताः॥२५०॥

भावार्थ—व्यावर से प्रस्थान करके हमारे चरित्रनायक श्री खूबचद्रजी म० सोजत और पाली मे धर्मोद्योत करते हुए जोधपुर पधारे। जोधपुर मे आप पडित मुनि श्री नन्दलालजी म० पडित मुनि श्री हीरालालजी म०, प० मुनि श्री देवीलालजी म० और प्रसिद्धवक्ता पडित मुनि श्री चौथमलजी म० आदि मुनिवरो के साथ आडवा वाले ठाकुर साहब की हवेली मे विराजमान हुए। उस समय यहाँ पर आपकी सेवा मे सादडी (मारवाड) का जैन श्री सघ अपने यहाँ चातुर्मास करने की प्रार्थना लेकर उपस्थित हुआ। क्योंकि उस समय केवल हमारे चरित्रनायकजी को छोड कर शेष सभी मुनियों का चातुर्मास यत्र तत्र स्वीकृत हो चुका था। उन दिनो सादडी (मारवाड) मे स्थानकवासी और मन्दिर-मार्गी (मूर्तिपूजक) समाज मे परस्पर वैमनस्य फैल रहा था। यहाँ तक, कि निर्ग्रंथ स्थानकवासी मुनि महाराज एव महासतियों का उस क्षेत्र मे गमन तक भी अवरुद्ध एव कष्टप्रद हो रहा था। अत सादडी (मारवाड़) के श्री सघ ने गुरुवर्य श्री के समक्ष अपने क्षेत्र की सारी परिस्थिति बतला कर, अत मे यह निवेदन किया, कि यदि इस वर्ष सादड़ी मे मुनिराजों का चातुर्मास नहीं होगा, तो सभवत तीन सौ घर स्थानकवासियों के जो वहाँ है, उनम से चालीस पचास घरों को छोड कर शेष सभी पर मूर्तिपूजक

बन जायेंगे, आदि-आदि। सादड़ी सघ के इस कथन को सुन कर, गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० ने क्षेत्र तथा धर्म की रक्षा के लिए अपने सुयोग्य शिष्य, हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी म० को इस उपद्रव की शान्ति के लिए उपयुक्त समझ कर, जन-कल्याण की दृष्टि से, उनकी इच्छा गुरुजी की सेवा मे रहने की होते हुए भी, उन्हें सादड़ी मे चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान की। गुरुदेव की इस आज्ञा से प्रेरित होकर, आपने वि० स० १९७३ का चातुर्मास सादड़ी (मारवाड) में मनाया। सादड़ी के चातुर्मास मे आपने अपने प्रति दिन के मनोहर एव शाति प्रदायक धर्मोपदेश द्वारा, वहाँ की जैन-जैनेतर प्रजा मे आशातीत शान्ति का सचार कर दिया। जिसके प्रभाव से श्वेताम्बर मदिरमार्गी समाज के सज्जन भी आपके उपदेश मे भाग लेने लगे। आपके उपदेशों द्वारा उन लोगों के हृदयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वे लोग बड़े ही आकर्षित हुए और श्रद्धालु बन कर आपकी भक्ति करने लगे। आपने वहाँ के पारस्परिक विद्वेष को ध्वस करके चतुर्थ कालीन भान के दृश्य को साक्षात् करके दिखा दिया। इस प्रकार शाँति स्थापित करते हुए आपने वहाँ का चातुर्मास सानन्द समाप्त किया। फिर आप अनेक ग्रामों मे अपने धर्मोपदेश द्वारा जनता को सन्मार्ग पर लगाते हुए ब्यावर पधारे ॥२४७-२५०॥

तदा श्रीलालस्य जरठवयसिस्थाः मुनिवराः,
स्थिताः स्थानाधिस्थाः मुनिमनुजपूज्याः सम्मुनयः।

विनेयास्तं नेतुं परमपरमित्वा मुनिनृपम,
परावृत्ता ज्ञात्वा परममपरं म्ंरशशिनम् ॥२५१॥
ततो यात्वा भाई कनकमलजीमातृवचनात्,
समातस्थुः स्थाने व्रतचरमुनिः शान्तिमहिनः ।
ततः मत्यादानः कनकमलजी श्रेष्ठिसहितो-
गुजेळोचैरास्यं मुनिषु महित शान्तिमहितम् ॥२५२॥
ग्रहीत्वा कस्येव गृहवमतिरादेशमधुना,
ग्रहीतेति पृष्टोः कथयति मुनि. शान्तिमहितः ।
समस्थामागारे कनकमलजीमातृवचनात्,
ततस्तद्वाक्य सः पुनरपि निशम्येति सुमुनेः ॥२५३॥
ययौ तूष्णीं भावं तदपि हृदये तस्य गमनम्,
समाकाट्चन्द्रायात् कनकमलजीवाक्यवशगः ।
पुनर्मध्याह्ने म कनकमलजी श्रेष्ठिपुवरः,
सुपन्नालालीय सपदि सदनं प्राप मुनिपम्॥२५४॥
तदायातपूज्यश्रीजिनयशशिगच्छीयसुजनो-
महात्मा तत्र श्रीबुधमणिमुनिश्चन्दनमलः ।
तदादिष्ट तस्यास्यमुनिमहितस्यैकफलके,
महाप्रेम्णा जातं हितकरं धर्ममहितम् ॥२५५॥

भावार्थ—उस समय ब्यावर में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज की सम्प्रदाय के कुछ मुनि स्थिर-वास के रूप में विराजमान थे।

जब चरित्रनायकजी ने नगर मे पदार्पण किया, तो मार्ग मे एक गली के रास्ते से पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के सन्त भी आपके सम्मुख स्वागतार्थ आए थे। क्योंकि उन्होंने यह समझा था, कि अपनी ही सम्प्रदाय के सन्तों का शुभागमन हुआ है। किंतु जब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचद्रजी महाराज को देखा,तो वे शीघ्र ही वापिस लोट गये। चरित्रनायकजी ने सुश्रावक श्री कनकमलजी नोहरा के मकान मे पदार्पण किया। और उनकी माताजी की आज्ञा प्राप्त करके वहीं पर निवास किया। उस दिन आपके व्रत का पारणा था। अत आपने तो वहीं पर विश्राम किया। और आपके साथ वाले मुनि गोचरी के लिए गये। पीछे से श्रीमान् सतीदानजी गोलेछा और श्री कनकमलजी यह दोंनो महाशय चरित्रनायकजी की सेवा मे उपस्थित हुए।* और निवेदन किया,कि आप

---

* दीक्षा-वृद्ध, शास्त्र विशारद, पण्डित मुनि श्री नन्दलालजी म० आदि मुनिराजों के प्रति पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को शास्त्रानुसार वन्दना करनी पड़ती थी। अत पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को यह कार्य अरुचिकर प्रतीत होता था। क्योंकि वे इनसे भिन्न रहना चाहते थे। इस मन्तव्य की सिद्धि के लिये, उन्हें उनके कुछ भक्त श्रावक, सहयोग प्रदान करते रहते थे। श्रीमान् सतीदानजी तथा श्री कनकमल जी भी उन्हीं के भक्त-श्रावकों मे से थे। इसीलिये उन्होंने मुनि श्री खूबचन्द जी म० आदि मुनिराजों को अपने मकान में नहीं ठहरने दिये।

यहाँ किस की आज्ञा से ठहरे हैं । तब शांतमूर्ति श्री सूरजचन्द्रजी म० ने उत्तर दिया कि—"हम श्री कनकमलजी की मातेश्वरीजी से आज्ञा प्राप्त करके यहाँ ठहरे हैं।" उस समय श्रीमान् सतीदानजी की यह इच्छा थी, कि इन को यहाँ से अभी हटा दिये जाँय। किन्तु कनकमलजी ने कहा, कि पारणा करके चले जाँयगे । थोडी देर के पश्चात् कनकमलजी फिर यहाँ आये । और मध्यान्ह के समय मे ही सेठ पन्नालालजी कांकरिया की हवेली मे पधारने की प्रार्थना करने लगे । तब हमारे चरित्रनायकजी शांतिपूर्वक वहाँ पधार गये । वहाँ पर पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज के गच्छानुयायी, पंडित रत्न, श्री चन्दनमलजी महाराज पधारे । इस प्रकार मुनि श्री सूरजचन्द्रजी महाराज एव पंडित रत्न श्री चन्दनमलजी महाराज इन दोनों मुनिवरों का व्याख्यान उस एक ही स्थान पर, प्रेम पूर्वक होता था ॥२५१-२५२-२५३-२५४-२५५॥

तत्र श्रीमुनिनन्दलालसहितोहीरादिलालोमुनि–
र्निद्वच्छेखरदेविलालसुमतिः श्रीचौथमल्लस्तथा ।
श्रीमन्तोमुनिराजकाः शुभपराः सप्तोत्तराविंशति,
तस्थुस्तत्रपरेऽपिदेशनपरा लालान्तपन्नागृहे ॥२५६॥
व्याख्यानं महता बभूव जनता सन्तोषद मोददम्,
पुण्य तत्खलु काकरीयसदनं पुण्यापण प्राजनि ।
चुन्नीलालमुकुन्दजीसुसहितः पन्नादिलालो धनी,
सेवा श्रीमुनिवृन्दकस्य विदधे श्रद्धाश्च भक्त्यायुतः

भावार्थ—तदनन्तर शास्त्र-विशारद पंडित मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज, कविवर श्री हीरालालजी म० पंडित मुनि श्री देवीलालजी म० और प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज आदि सत्ताईस सन्तों का शुभागमन ब्यावर में हुआ। और वे सभी सन्त भी श्रीमान् सेठ पन्नालालजी काँकरिया के उसी भव्य-भवन में विराजमान् हुए *। व्याख्यान का बड़ा भारी आनन्द

* ब्यावर में इस समय, इतने मुनिराजों के एकत्रित होने का मुख्य कारण यह था, कि गत चतुर्मास के पूर्व जोधपुर में पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म०की सम्प्रदाय के साधुओं का सम्मेलन, इस उद्देश्य से हुआ था, कि इस सम्प्रदाय में जो पारस्परिक मत भेद उत्पन्न हो गया है। उसे मिटा कर सम्प्रदाय में एक आचार्य नियुक्त कर दिया जाय,अत इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जोधपुर के कतिपय मुख्य मुख्य श्रावकों का एक डेपुटेशन सरदार शहर में विराजित, पूज्य श्री श्रीलाल जी म० की सेवा में उपस्थित हुआ था। डेपुटेशन के सदस्यों ने पूज्य श्री श्रीलाल जी म० से सघठन के विषय में बातचीत की। पूज्य श्री ने आशाजनक उत्तर भी प्रदान किया। तब डेपुटेशन ने जोधपुर आकर मुनि सम्मेलन के समक्ष पूज्य श्री का आशाजनक सन्देश प्रकट किया। पूज्य श्री के इसी सभ्य के आश्वासन के कारण ही ब्यावर में यह सन्त समुदाय एकत्रित हुआ था। किन्तु भावी-प्रबलता के कारण पूज्य श्री श्रीलाल जी म० यहाँ पर भी नहीं पधार सके। तब बहुत कुछ विचार परामर्श के पश्चात् ऐसा हुआ, कि ब्यावर श्री संघ ने जावरा निवासी श्री मगनीराम जी राका को जम्मू (काश्मीर) में विराजित मुनि श्री मुन्नालालजी महाराज की सेवा में भेजे। और श्रीमान् वकील

रहा। पाली निवासी श्रीमान् सेठ मुकुन्दचन्दजी बालिया, सेठ चुन्नीलालजी सोनी और सेठ पन्नालालजी काँकरिया आदि महानुभावों ने मुनिवरों की खूब ही सेवा भक्ति की ॥२५६-२५७॥

नेत्राश्वाङ्कमहीमिते शुभतमे माघे सिते पञ्चमी-
तिथ्या सः मुनिसंघदेशनवशात् श्रीदेविलालादिभिः ।
पञ्चाम्बु प्रस्थित्य नूतनपुरोमार्गेऽजमेरादिके,
व्याख्यान विदधन् ययानलवर श्रीखूबचन्द्रोमुनिः ॥
श्राग्रातः समुपाययौ मुनिवरं श्रीसघकस्तत्र तम्,

गम्भूलाल जी चौधरी को दक्षिण में विराजित श्री जवाहिरलालजी महाराज के पास भेजे। दक्षिण से श्रीमान वकील गम्भूलालजी द्वारा मुनि श्री जवाहिरलालजी महाराज की तरफ से ब्यावर श्री सघ के पास सम्मति आई, कि मुनि श्री मुन्नालालजी महाराज को पूज्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिये जाँय। उधर जम्मू से श्री आवरा निवासी श्री मगनीरामजी राका द्वारा मुनि श्री मन्नालालजी म० की ओर से आचार्य पद स्वीकार करने की सूचना प्राप्त हुई। तथापि दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी लोढा, राय बहादुर सेठ कुन्दनमलजी रीयां वाले और श्री सेठ रतनलालजी सरावगी आदि महानुभावों ने पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर सम्प का पूर्ण प्रयत्न किया। किन्तु उनके निष्फल हो जाने पर सवत् १६७३ की शुभ मिति माघ शुक्ला पचमी (वसन्त पचमी) के दिन श्री मुन्नालालजी महाराज को बड़े समारोह के साथ आचार्य पद प्रदान कर देने का ध्रुव निश्चय किया गया।

चातुर्मासमहोत्सवाय बहुशः प्रार्थां दधौ साग्रहम् ।
वीक्ष्य प्रार्थनतां तदा बहुनृणां मेने चतुर्मासकम्,
तुर्याश्वङ्कमहीमितेऽनलवरादाग्राश्च प्रौढ्खीदमी ॥२५६॥

भावार्थ—विक्रम संवत् १९७३ की माघ शुक्ला पंचमी के पश्चात्, सम्प्रदाय के समस्त मुनिवरों की आज्ञानुसार पंडित मुनि श्री देवीलालजी महाराज और चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी महाराज आदि मुनियों ने ब्यावर से पंजाब की तरफ प्रस्थान किया। मार्ग में अजमेर, किशनगढ और जयपुर आदि अनेक नगरों और ग्रामों में धर्म प्रचार करते हुए आप अलवर में पधार गये। वहाँ पर आगरा का श्री संघ चातुर्मास की विनती लेकर आपकी पावन सेवा में समुपस्थित हुआ। और अत्यन्त आग्रह पूर्वक निवेदन किया, कि" कृपालु मुनिवर ! आगरा में चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान कर हमें कृतार्थ कीजिएगा।" श्री चरित्रनायकजी आगरा संघ की इस आग्रह भारी प्रार्थना को नहीं टाल सकते थे। अतः चातुर्मास करने के लिए, आपने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। और तदनुसार आप अलवर से विहार करते हुए वि० सं० १९७४ का चातुर्मास मनाने के लिए आगरा शहर में पधार भी गये ॥२५८-२५६॥

तुर्याश्वाङ्कमहीमिते शुभतमे आग्रे चतुर्मासकम्,
नेतुं संप्रययौ तदा मुनियुतः संघाग्रहात्रोगिराट् ।

सूनाःपूर्ववदेव तत्र सुमतिः श्रीमान्यशोरावजी,
हिंसकारणकारुरोधधनिकः संवत्सरे पर्वणि ॥२६०॥

भावार्थ—वि० सं० १६६७ के चातुर्मास की भाँति अब की बार भी सवत्सरी पर्व के दिन चरित्रनायकजी के सदुपदेश से, धर्म-प्रेमी श्रीमान् सेठ यशवन्तराय जी सा० के प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा लोहामण्डी और शहर आदि स्थानों के चार कत्ल खाने बन्द रहे। यों यह चातुर्मास भी बड़े ही आनद के साथ सम्पन्न हुआ ॥२६०॥

पंजाब में धर्म प्रचार

वर्षायाः समयं समाप्य मुनिराडत्याग्रहात्पूर्णा-
माग्रायां कतिचिद्दिनानि वसन कृत्वा तु दिल्लीं ययौ।
जम्मुं गन्तुमनास्ततोमुनिवरश्रीदेविलालेन सः,
कालिन्यास्तटगाननेकनगरान् शिवँश्च नामा ययौ ॥२६१॥

भावार्थ—शहर आगरा का चातुर्मास समाप्त कर के, आप श्रावकों के अत्याग्रह से कुछ दिन लोहामण्डी (आगरा) में ठहर कर, फिर देहली पधारे। यहाँ से पंडित मुनि श्रीदेवीलालजी म० के साथ आपने जम्मू (कारमीर) पधारने के लिए विहार किया। मार्ग में जमुना-पार के अनेक क्षेत्रों को तथा करनाल, अम्बाला और पटियाला को पावन करते हुए आप नामा पधारे ॥२६१॥

विलायतीराममहानुभावं श्रीओसवालं लुधियानवासम् ।
सघाज्ञयासोत्सवदीक्षितं तं निधायनाभापुरीतः प्रतस्थे ॥
मालेरकोटे जिनधर्मतत्त्वं दिशन् प्रपेदे लुधियानपुर्याम् ।
तत्रात्मरामस्य गुरून्प्रपंद्य एकत्र पट्टे दिशतिस्म धर्मम्॥२६३

भावार्थ—नाभा मे आपके पास, लुधियाना निवासी श्री विलायतीराम जी नामक एक ओसवाल बन्धु ने दीक्षा स्वीकार की । नाभा श्री सघ ने दीक्षोत्सव बडे ही समारोह के साथ मनाया । नाभा से प्रस्थान कर, आप मालेरकोटला होते हुए लुधियाना पधारे । वहाँ पजाबी मुनि उपाध्याय श्री प० आत्मारामजी म० के गुरु, दादा गुरु और उनके गुरु विराजमान थे । उन मुनिराजों के साथ चरित्र नायकजी ने, बडा ही प्रेम तथा वात्सल्यता का भाव प्रकट किया । और उन्हीं के निवास-स्थान मे एक ही पट्टे पर बैठ कर व्याख्यान दिये॥२६२-२६३॥

ततः कपूरस्थलकं पवित्वा, जलन्धरं प्राप्यसतीं प्रवृद्धाम् ।
श्रीपार्वतीं चन्द्रमतीञ्च दृष्ट्वा सुधासरे पूज्यमुनिं प्रवृद्धम् ।
श्रीकाशिरामोदयचन्द्रकाख्या, ददर्शतं सोहनलालजीकम्,
प्रश्नोत्तराणि भवताञ्च तेषां, जातानि वात्सल्यप्रभावितानि

भावार्थ—लुधियाना से फगवाडा और कपूरथला होते हुए जालधर पधारे । वहाँ भारत-विख्यात, विदुषी सतीजी श्री पार्वती जी महाराज और विदुषी सती श्री चन्दादेवीजी म० आदि सतियाँ विराजती थीं । उनके साथ भी आपकी यथायोग्य वात्सल्यता रही

और परस्पर ज्ञान चर्चा भी होती रही। फिर आप मडियाला होते हुए अमृतसर पधारे। वहाँ पर विद्वान् और वयोवृद्ध पूज्यश्री सोहन लालजी महाराज, गणिजी श्री उदयचदजी म० और युवाचार्य पडित मुनि श्री काशीरामजी म० के साथ भी आपका प्रेम वात्सल्य अच्छा रहा। परस्पर शास्त्रोक्त प्रश्नोत्तर भी यथेष्ट रीति से हुए। २६४-६५

क्षेत्राणि सपूय बहूनि सद्यः श्रीलालचन्द्रै जरठैर्मुनिभिः
सस्वागत पण्डितदेविलालैः-सुश्यालकोटञ्च ततः प्रपेदे ॥
एकत्र पट्टे दिशने द्वयोरच बभूव सप्रेमपर वृषस्य ।
कृतादर जम्मुमर मनीन्द्रो-मुन्नेन्दुबालेन्दुमुनी प्रतस्थे ॥२६७

भावार्थ—अमृतसर से विहार कर पसरूर आदि कई क्षेत्रों मे होते हुए आप शहर स्यालकोट मे पधारे। वहाँ पर वयोवृद्ध और पजाबी सम्प्रदाय मे सब से बड़े पडित मुनि श्री लालचन्दजी म० सा० विराजमान थे। उन्होंने पडित मुनि श्री देवीलालजी म० और श्री चरित्रनायकजी म० का प्रेम पूर्वक यथायोग्य स्वागत किया। एक ही स्थान पर ठहरे और व्याख्यान भी सम्मिलित ही हुए। वहाँ से आप जम्मूतवी पधारे। वहाँ के श्री सघ ने जय-ध्वनि के साथ आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। नगर मे पदार्पण करते ही आप सीधे पूज्य श्री मुन्नालालजी म० एव तपस्वी श्री बालचन्द्रजी म की सेवा मे उपस्थित हुए।।२६६-२६७।।

जम्मू म आचार्य पदोत्सव

वैसाखमासे सितपक्षमध्ये, तिथौ दशम्यां कृतयोजनायाम् ।
आचार्यपट्टस्य महोत्सवस्य,दिङ्नागसंख्या मनुजाः बभूवु
कास्मीरपुंनायकतोऽपि तत्र, प्रापुर्जनाःस्वागतमत्र याताः।
प्रबन्धकार्यं बहुशंसनीयम् जम्मूजनानामभवत्समस्तम्॥२६६

भावार्थ—वैशाख शुक्ला १० के दिन, जम्मू नगर में पूज्य श्री मुन्नालालजी महाराज के 'आचार्य-पद-महोत्सव' की योजना की गई थी। 'आचार्य-पद-महोत्सव' के कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए, अन्य ग्रामों के भी हजारों बन्धुओं ने भाग लिया था। लग भग आठ-दस हजार की विराट् मानव-मेदिनी के बीच आचार्य-पदारोहण का कार्यक्रम बडे समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। जम्मू सघ का उत्साह प्रशसनीय था। जम्मू (काश्मीर) नरेश की ओर से भी आगत बन्धुओं की सेवा-सुश्रूषा तथा स्वागतार्थ जो प्रबन्ध किया गया था, वह बड़ा ही सराहनीय था। इस 'आचार्य-पद-महोत्सव' का विशेष उल्लेख 'त्रि-मुनि-चरित्र' में किया गया है ॥२६८-२६६॥

श्रीसंघकरचरितनायकमत्रवर्षा,
मासावरोधकरणाय चकार-यत्नम् ।
पूज्याज्ञया शरमुनिग्रहचन्द्रमध्ये,
तस्थे तदा विदधता-जिनधर्मवर्षाम् ॥२७०॥

वर्षावसानसमये मघवानगर्याम्,
मुन्नेन्दुबालशशिना प्रययौ महात्मा ।
तत्रागतालवरसघनिवेदनेन,
वर्षाव्यतीतकरणाय ततः प्रपेदे ॥२७१॥

भावार्थ—जम्मू श्री सघ के विशेष आग्रह से, तथा पूज्य श्री की आज्ञा से प्रेरित होकर आपने सवत् १६७५ का चातुर्मास काश्मीर देशस्थ जम्मू नगर में ही किया। इस चातुर्मास मे आपकी अमृतोपम वाणी से श्री सघ मे तपस्या तथा धर्म ध्यान का खूब ही उद्योत हुआ। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् आचार्य श्री जी के साथ-साथ उनकी सेवा मे रह कर, आप अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए, पुन दिल्ली नगर मे पधारे। और फिर अलवर श्री सघ का विशेष आग्रह देखकर पूज्य श्री की आज्ञा से चातुर्मास के लिए अलवर पधारे ॥२७०-२७१॥

अलवरपुरमध्ये योगनिष्ठोमुनीन्द्रः
रसमुनिनिधिभूमिवत्सरे विक्रमीये ।
समनयतसुजैनोक्त्या गिराहर्षचेता,
विविधसदुपदेशैस्तच्चतुर्मासिकञ्च ॥२७२॥
मुनिवरपथगामीश्रीमयाचन्द्रयोगी
तप श्चतुमतपधस्तप्ततो येन मासम् ।
अभिहितसुतपोऽन्ते सद्गुरुश्रोधमेन,

नरवरजयसिंहस्याज्ञया सर्वसूना: ॥२६८॥
समरुणदथ योधैर्भर्जका पूपिकानाम्,
रजकरजतकारस्वर्णकारादिकानाम् ।
जिनवचनसुभावै: पात्रपूटीस्तथा च,
मथितसुकृतमाद्यास्तत्तपोवर्णयन्ति ॥२६९॥
नृपमुदवनकारा संस्थितक्रव्यभोजि,
क्षुरिगणमपि शुद्धे वासरे दुग्धपानै: ।
क्षुधितजठरपीडामाततर्पत्प्रमाणै—
र्गुणिषु निपुणदानं श्रीनिदानञ्चकार ॥२७०॥
व्रतशुभचरितान्ते प्रस्तुते पारणान्ते,
वसनमशनवित्तं प्राददाद् गतेभ्य: ।
धनरहितजनाना धर्ममार्गे रतानाम्,
सनजनि सुखकृत्यं तद्दिने यद्धिकृत्यम् ॥२७१॥

भावार्थ—आपने विक्रम स० १९७६ का चातुर्मास अलवर नगर मे व्यतीत किया। वहाँ पर आपके प्रभाव से धर्माराधना एव तपश्चर्या प्रचुर परिमाण में हुई। आपके समीपस्थ तपस्वी मुनि श्री मयाचन्द्रजी म० ने केवल गर्म जल के आधार से, एक मास का अनशन व्रत किया। इस तप-व्रत को पूर्ति के उपलक्ष मे सघ की प्रबल प्रेरणा से अलवरेन्द्र हिज हाईनेस कर्नल सवाई महाराजा धिराज श्री जयसिंह जी बहादुर जी सी एस आई जी सी आई.

ई की आज्ञानुसार शहर में समस्त बूचडखाने तथा भडभूँजे हलवाई, धोबी, और सुनारों की भट्ठियां भी बन्द रहीं। सरकारी बगीचों के अजायबघरों में रहने वाले महाराजा साहब के शेरों को भी उस दिन माँस के बदले दूध पिलाया गया। और पारणे के दिन, दीन दुखी प्राणियों को भोजन वस्त्र और धन आदि दान दिया गया। उस दिन जितने भी कार्य हुए वे सब-के-सब दीन दुखी और दरिद्रों तथा धर्म-कार्य निरत व्यक्तियों के लिए सुख प्रदायक थे।

नरनिकरमुखाब्जप्रेरिताहास्यवर्षा,
समजनि वसुधाया हर्षहास्यप्रभेव।
तदनुमनुजवृन्दैः श्रूयमाणः स्मितास्यै-
र्दिवि निरवधिरुच्चैर्दुन्दुभीनां निनादः ॥२७२

भावार्थ—उस समय पृथ्वी-मण्डल के नैसर्गिक परिहास की असाधारण कान्ति के समान पुरुषों के मुख मण्डल से हर्ष की वर्षा हुई। और आकाश-मण्डल को गूँजा देने वाली भेरियों एवं दुन्दुभियों का गगन भेदी निनाद हुआ ॥२७२॥

जयपुरनगरेऽगाश्वाङ्कभूवैक्रमाब्दे-
नयतशुचिदचातुर्मासशुभ्रप्रभावैः।
गुरुवरपदभक्तश्रीप्रमाग्रामनिवासी,
जिनशुभपथजोऽभूत्फूलचन्द्रस्य सूनुः॥२७३॥
स्फुरदमलगुणौघः पुण्यगण्यः सुनामा,

नयविनयविवेकोद्यानपुंस्कोकिलो यः।
सुजनकमलभानुर्दुष्टकक्षे कृशानुः,
यदिवृढदृढभक्तीरेखचन्द्रोगुणीन्द्रः ॥२७४॥
ललितभुवनमध्ये तस्य योगीन्यवात्सीन्,
जिनपतिवचनार्कैः प्रापुफुल्लत्वयाब्जम्।
अजिनजिनमनुष्याः प्राप्सतप्रभभावैः,
प्रणिहितजिनधर्मं कर्मनिर्मूलनाय ॥२७५॥

भावार्थ—वि० सं० १९७७ का चातुर्मास आपने जयपुर में किया। यहाँ पर भक्त-शिरोमणि, आगरा निवासी श्रीमान् सेठ रेखचन्द्रजी के सुपुत्र श्री फूलचन्द्रजी की हवेली में निवास किया। यहाँ पर भगवान के वचन रूपी सूर्य द्वारा आपने धर्म रूपी कमल को विकसित किया। और जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय-प्रदेश में, कर्म-ग्रन्थि का समूल नाश करने के लिए, धर्म के प्रभाव को स्थायी रूप से अंकित कर दिया ॥२७३-२७४॥

तत्रातपत्सोष्णजलाश्रयेण, मासं मयाचन्द्रयतिस्तपस्वी।
तत्पारणान्ते जिनशास्त्रशिष्ट्या, दानैर्यशोभिःसुरभीकृतासङ्गम्
तपोव्रतस्याचरणादवश्यं, पुण्यावधेः सिद्धिरसोदितातः।
कल्याणकोटिं कलयाञ्चकार, करान्तु केकस्य न लास्यलीलम्
तत्रोल्लसल्लास्यभरं तरङ्गीतध्वनिस्फूर्जिततूर्यनादः।
प्रमोदयामासकथाप्रबन्धैर्विशेषतोऽशेषमनीषिहृद्यैः ॥२७८॥



श्रीमान् स्वर्गीय महाराजाधिराज सवाई सर माधोसिंह जी साहब १०।

नयविनयविवेकोद्यानपुंस्कोकिलो यः।
सुजनकमलभानुर्दुष्टकक्षे कृशानुः,
यरिवृढदृढभक्तीरेखचन्द्रोगुणीन्द्रः ॥२७४॥
ललितभुवनमध्ये तस्य योगीन्यवात्सीन्,
जिनपतिवचनार्कैः प्रापुफुलमब्याब्जम् ।
अजिनजिनमनुष्याः प्राप्ततत्प्रभावैः,
प्रणिहितजिनधर्मं कर्मनिर्मूलनाय ॥२७५॥

भावार्थ—वि० सं० १९७७ का चातुर्मास आपने जयपुर में किया। वहाँ पर भक्त-शिरोमणि, आगरा निवासी श्रीमान् सेठ रेखचन्द्रजी के सुपुत्र श्री फूलचन्द्रजी की हवेली में निवास किया। वहाँ पर भगवान के वचन रूपी सूर्य द्वारा आपने धर्म रूपी कमल को विकसित किया। और जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय प्रदेश में, कर्म-ग्रन्थि का समूल नाश करने के लिए, धर्म के प्रभाव को स्थायी रूप से अंकित कर दिया ॥२७३-२७५॥

तत्रावपत्सोष्णजलाश्रयेण, मासं मयाचन्द्रयतिस्तपस्वी ।
तत्पारणान्ते जिनशास्त्रशिष्ट्या, दानैर्यशोभिःसुरभीकृतासद्म
तपोव्रतस्याचरणादमुष्य, पुण्यावधेः सिद्धिरसोदितातः ।
कल्याणकोटिं कलयाञ्चकार, करान्बु-केकस्य न लास्यलीलम्
तत्रोल्लसल्लास्यभरं तरङ्गिगीतध्वनिस्फूर्जिततूर्यनादः ।
प्रमोदयामासकथाप्रबन्धैर्विशेषतोऽशेषमनीषिहृद्यैः ॥२७८॥

प्रभु द्वारा प्ररूपित तत्वों का भली प्रकार से निरूपण करके धर्म-ध्यान का दिव्य प्रकाश किया ।।२८२।।

प्रायाद्गुरोर्भक्तिनिपिक्तचते, ततो मुनिर्व्यावरनामपुर्याम्
दृष्ट्वागुरुं योगपनन्दलालममूमृदत्पादमरोजभृङ्गाः।।२८३।।
तत्पदनादैद्गुरुणा सहैपस्ताल लुमानीश्च मदारियाञ्च ।
कोशीस्थल गङ्गपुरं पुरञ्च यात्रा समायात्पुरभीलवाडाम् ।।
व्याख्याननिज्ञाःसुधियोमुनीन्द्रास्तत्राचकासुःस्वरशक्तिगुम्फाः
चैत्रेसिते द्वादशमीतिथौ च सोमेऽदिदीक्षिद्वनयिग्मनुष्यान् ।।
निर्विण्णं तं महाभागं, रत्नलाल गुणान्वितम् ।
भण्डारीगोत्रसम्भूत श्रीमद्रिखभचन्द्रकम् ।।२८६।।
प्राडवागन्वयजं चैव मुणोत राजमल्लकम् ।
दशसहस्रसंख्याताजनाः प्राणैगुरुत्तमम् ।।२८७।।
चैत्रेमहावीरनिभोर्जयन्ती दिने ममारोहणमापनिष्ठ ।
श्रमिद्वनक्ता मुनिचाथमल्लो निद्वत्सु रतन्न मुनिदेनिलालः ।।
मङ्गारतीद्धाः सकलाः मुनीन्द्रा इत्यादयः पूर्णतया चकासुः ।
जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीना प्रमोदमुद्राः समधुर्जनानाम् ।।
ततोऽगमद्रत्नपुरे मुनीशः समाव्ययीज्जागजनन्दचन्द्रे ।
वर्षे तथा सद्गुरुपादपद्मंश्रित्वा तनिता जिनधर्मवृद्धिम् ।।

भावार्थ—अजमेर से विहार कर आप ब्यावर पधारे । यहाँ पर गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० विराजमान थे । अत आप

कृष्णाद्वादशमी तिथौ दिवमयान्मुनीन्दुः पूज्यस्तदा,
वर्षेऽस्मिन् शुचिमासि सोमदिवसे भुक्त्वा प्रपूर्णं वयः ।
द्वात्रिंशच्छुभजैनशास्त्रनिपुणो ज्ञातः क्षमासागरः,
एवं शास्त्रविशारदीयपदवी सम्मार्चितः कोविदैः ॥३२७॥

भावार्थ—उसी वर्ष के आषाढ कृष्णा द्वादशी सोमवार के दिन पूज्य श्री मुन्नालालजी महाराज का शरीरान्त हो गया। आप बत्तीस शास्त्रों के ज्ञाता थे। क्षमा के गभीर सागर थे। इसीलिए विद्वत समाज द्वारा आप शास्त्र विशारद के पद से विभूषित किये गये थे ॥३२७॥

चन्द्राननः समाख्यातः शान्तिमुद्राशुभालयः ।
तपसाभालपट्टं च यस्यार्चिष्टं सर्वदा ॥३२८॥
आबाल्याद्वृद्धपर्यन्तं ब्रह्मचर्यमपूपुषत् ।
स्वर्गापवर्गसौख्यानि येन हस्ते कृतानि च ॥३२९॥
गम्भीरा मधुरा वाणीमपि यः श्रोत्रसुन्दराम् ।
निःशेषशास्त्रनिष्णाता बुद्धिं ध्वस्ततमोमलाम् ॥३३०॥
अशक्तश्च चलितुं पद्भ्यां मुन्नालालोमुनीश्वरः ।
दृष्टिर्निष्फलता याता कम्पितं च शिरोऽभवत् ॥३३१॥
मुनीन्द्रस्कन्धयाप्यानस्थितोऽप्यश्वसमानपि ।
अजमेरपुरे रम्ये साधुसंमेलनेषु निः ॥३३२॥
त्यक्त्वा शिष्येषु ममता श्रीमिश्रीमुनिरत्नके ।
स्वीक्यैक्यं महाहर्षैरजहात्ससकलं कलिम् ॥३३३॥



धर्म प्रेमी श्रीमान् सेठ सोभागमलजी महेता, जावरा (मालवा)

कृष्णाद्वादशमी तिथौ द्विवमयान्मुन्नेन्दुः पूज्यस्तदा,
वर्षेऽस्मिन् शुचिमासि सोमदिवसे मुक्त्वा अपूर्ण वयः ।
द्वात्रिंशच्छुभजैनशास्त्रनिपुणो ज्ञातः क्षमासागरः,
एवं शास्त्रविशारदीयपदवी संप्रार्चितः कोविदैः ॥३२७॥

भावार्थ—उसी वर्ष के आषाढ कृष्णा द्वादशी सोमवार के दिन पूज्य श्री मुन्नालालजी महाराज का शरीरान्त हो गया। आप बत्तीस शास्त्रों के ज्ञाता थे। क्षमा के गभीर सागर थे। इसीलिए विद्वत् समाज द्वारा आप शास्त्र विशारद के पद से विभूषित किये गये थे ॥३२७॥

चन्द्राननः समाख्यातः शान्तिमुद्राशुभालयः ।
तपसाभालपट्टं च यस्यार्चिष्ट सर्वदा ॥३२८॥
आबाल्याद्वृद्धपर्यन्तं ब्रह्मचर्यमपूपुषत् ।
स्वर्गापवर्गसौख्यानि येन हस्ते कृतानि च ॥३२९॥
गम्भीरां मधुरां वाणीमपि यः श्रोत्रसुन्दराम् ।
निःशेषशास्त्रनिष्णाता बुद्धिं व्यस्ततमोमलाम् ॥३३०॥
अशक्तश्च चलितुं पद्भ्यां मुन्नालालोमुनीश्वरः ।
दृष्टिर्निष्फलता याता कम्पितं च शिरोऽभवत् ॥३३१॥
मुनीन्द्रस्कन्धयाप्यानस्थितोऽपश्वसमानपि ।
अजमेरपुरे रम्ये साधुसमेलनेऽमु निः ॥३३२॥
त्यक्त्वा शिष्येषु ममतां श्रीमिश्रीमुनिरत्नके ।
स्वीकर्यैक्यं महाहर्षैरजहात्ससकलं कलिम् ॥३३३॥



धर्म प्रेमी श्रीमान् सेठ सोभागमलजी महेता, जावरा (

भावार्थ—आपका मुख चन्द्रमा के समान उज्वल क्रांति का धारक था। तपोबल के कारण आपका ललाट सदैव चमकता रहता था। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आपने स्वर्ग और मुक्ति के सुख को हस्तगत-सा कर लिया था। आपकी वाणी गम्भीर मधुर और कर्ण-प्रिय थी। आपने अपनी विचक्षण बुद्धि के द्वारा बत्तीस सूत्रों के गूढ रहस्यों का उद्घाटन किया था। वृद्धावस्था तथा शारीरिक असमर्थता के कारण आपको पालखी मे बैठाये गये थे। और उस पालखी को बडे बडे मुनिराजों ने अपने कन्धों पर उठा कर आपको मुनि-सम्मेलन अजमेर मे पहुँचाये थे। वहाँ पर आपने समस्त वाद-विवाद को निवारण कर के तथा शिष्यों पर से अपना ममत्व-भाव दूर कर के मुनि श्री मिश्रीलालजी म० की प्राण-रक्षा के लिए चिरकाल से प्रचलित दो पक्षों के पारस्परिक कलह को मिटा कर ऐक्य की स्थापना की थी ॥३२८–३३

चातुर्मासमवोदरत्नपुरियोऽपेपिष्टधर्मं निजं,
श्रीमत्सज्जनमान्यपूरुषमनः क्ष्माया सभावापि यः।
संसिक्तोऽपि च यैर्वचोऽमृतरसैः कारुण्यकल्पद्रुमो-
दक्तेऽद्यापि फलं सदैव शिवद विश्वोपकार भुवि ॥३३४॥

भावार्थ—वि० स० १९९० का चातुर्मास आपने रतलाम मे किया। वहाँ पर आपने (चरित्र नायक जी ने) अपने धर्मोपदेश द्वारा जनता के हृदय रूपी क्षेत्र मे दया रूपी कल्पवृक्ष का बीजारोपण किया ॥३३४॥

पंचम परिच्छेद

आचार्य-पदारोहण

तद्वर्षेऽर्जुनमासिशुक्रदिवसे शुक्ला तृतीया तिथौ,
श्रीमद्रत्नललामनामनगरे मालव्यदेशस्थिते ।
मुन्नालालमुनीशपट्टफलके सह्वै महोत्साहतः,
सोप्याचार्यपदार्चितः समभुदत् सोल्लासितेजः स्थितिः ॥
एकस्मिन्समयेऽममन्त्रतमुदैः सत्साधुवृन्दैः सह ।
स्वाचार्यार्चितखुबचन्द्रसुगुणी गच्छे स्वकीये त्रुटिम् ।
हर्षैः पोषयितुं सुयोग्यचरितान् साधून् शुभैर्वैरुदै-
रेतत्तस्य विचारितं समतनीदुगन्धं यथा वायुना ॥३३६॥
नानाग्रामजनाग्रसङ्घपुरुषा आचार्यमामेजिरे,
कर्तुं तन्महदुत्सवं शुभकरं ग्रामे स्वकीये ततः ।
आचार्यस्य विचारगामिपुरुषः श्रीसङ्घमुख्याग्रणी,
मग्राचूकुणतप्रतीतरुरणो श्रीमन्दसौरे पुरे ॥३३७॥

माघे शुक्लशनौ दिने मखतिथौ श्रीमन्दसौरे पुरे,
ज्यानन्दग्रहगह्वरीपरिमिते संवत्सरे वैक्रमे ।
तत्स्थाने मिलिता जनाः सुकृतिनः सच्छ्रावकाः श्राविकाः,
संख्याया नभपूर्णपुष्करशरज्याज्ञापिताया किल ॥३२८॥

भावार्थ—उसी वर्ष के फाल्गुन शुक्ला तृतीया शुक्रवार के दिन रतलाम के स्थानकवासी चतुर्विध संघ ने हमारे चरित्रनायकजी की परम पवित्र कल्याणकारिणी, बोधप्रद और सरस वाणी पर तथा उनके शान्त्यादि आचार्य पदोचित गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें स्वर्गीय पूज्य श्री मुन्नालालजी म० के स्थान पर, आचार्य पद से सम्मानित किये ॥३४॥ आचार्य-पद से अलंकृत होने के पश्चात् चरित्रनायक जी ने चतुर्विध संघ के समक्ष अपने गच्छ के सुयोग्य साधुओं को उनके गुणानुसार जैन दिवाकर, युवाचार्य, गणि, उपाध्याय, प्रवर्तक और सलाहकारक आदि पद प्रदान किये जाने की महत्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा के शुभ समाचार वायुवेग की तरह नगर निवासियों के कर्ण-कुहरों में गूँज उठे। अन्यान्य ग्रामों और नगरों के श्री संघों ने भी इस महत्वपूर्ण घोषणा का हार्दिक स्वागत किया। और इस पदोत्सव के कार्यक्रम को अपने अपने ग्रामों में सानन्द सम्पादित करने के लिए आचार्य श्री की सेवा में साग्रह प्रार्थना भी की। परन्तु संघ के अग्रगण्य सज्जनों ने इस महोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने के लिए मन्दसौर के क्षेत्र को ही उपयुक्त समझ

पंचम परिच्छेद

आचार्य-पदारोहण

—— ० ——

तद्वर्षेऽर्जुनमासिशुक्रदिवसे शुक्ला तृतीया तिथौ,
श्रीमद्रत्नललामनामनगरे मालव्यदेशस्थिते।
मुन्नालालमुनीशपट्टफलके सङ्घ महोत्साहतः,
सोप्याचार्यपदार्चितः सममुदत् सोल्लासितेजः स्थितिः ॥
एकस्मिन्समयेऽममन्त्रतमुदैः सत्साधुवृन्दैः सह।
स्वाचार्यार्चितखूबचन्द्रसुगुणी गच्छे स्वकीये त्रुटिम्।
हर्षैः पोषयितुं सुयोग्यचरितान् साधून् शुभैर्वरुदै-
रेतत्तस्य विचारितं समतनीद्गन्धं यथा वायुना ॥२३६॥
नानाग्रामजनाग्रसङ्घपुरुषा आचार्यमामेजिरे,
कर्तुं तन्महदुत्सवं शुभकरं ग्रामे स्वकीये ततः।
आचार्यस्य विचारगामिपुरुषः श्रीसङ्घमुख्याग्रणी,
मंप्राचूकुणतप्रतीतकरखे श्रीमन्दसौरे पुरे॥२३७॥

माघे शुक्लशनौ दिने मखतिथौ श्रीमन्दसौरे पुरे,
ज्यानन्दग्रहगह्वरीपरिमिते संवत्सरे वैक्रमे ।
तत्स्थाने मिलिता जनाः सुकृतिनः सच्छ्रावकाः श्राविकाः,
संख्याया नमपूर्णपुष्करशरज्याज्ञापिताया किल ॥३३८॥

भावार्थ—उसी वर्ष के फाल्गुन शुक्ला तृतीया शुक्रवार के दिन रतलाम के स्थानकवासी चतुर्विध संघ ने हमारे चरित्रनायकजी की परम पवित्र कल्याणकारिणी, बोधप्रद और सरस वाणी पर तथा उनके शान्त्यादि आचार्य पदोचित गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें स्वर्गीय पूज्य श्री मुन्नालालजी म० के स्थान पर, आचार्य पद से सम्मानित किये ॥३४॥ आचार्य-पद से अलंकृत होने के पश्चात चरित्रनायकजी ने चतुर्विध संघ के समक्ष अपने गच्छ के सुयोग्य साधुओं को उनके गुणानुसार जैन दिवाकर, युवाचार्य, गणि, उपाध्याय, प्रवर्तक और सलाहकारक आदि पद-प्रदान किये जाने की महत्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा के शुभ समाचार वायुवेग की तरह [illegible] सियों के कर्ण-कुहरों में गूँज उठे। अन्यान्य ग्रामों और नगरों के श्री संघों ने भी इस महत्वपूर्ण घोषणा का हार्दिक [illegible] और इस पदोत्सव के कार्यक्रम को अपने अपने सम्पादित करने के लिए आचार्य श्री की सेवा में [illegible] की। परन्तु संघ के अग्रगण्य सज्जनों ने इस [illegible] को सम्पादन करने के लिए मन्दसौर के [illegible]

कर सर्वानुमति से मन्सौर संघ के आमंत्रण को स्वीकार किया। और तदनुसार वि० सं० १६६१ के माघ शुक्ला त्रयोदशी शनिवार के दिन यह "युवाचार्यादि पदोत्सव" सानंद मनाया गया। महोत्सव के समय चतुर्विध संघ की उपस्थिति लगभग पंद्रह हजार की थी। और साधु-साध्वियों की संख्या अनुमानतः १०० के लगभग थी ॥३३४-३३६-३३७-३३८॥ *

* अजमेर के श्री बृहत् मुनि सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् पूज्य श्री मुन्नालालजी म० साहब की आज्ञा प्राप्त करके हमारे चरित्र-नायक पूज्य श्री खूबचन्दजी म० ने अजमेर से रतलाम की ओर प्रस्थान कर दिया। क्योंकि आपके पूज्यनीय गुरुदेव श्री नन्दलालजी म० वि० सं० १६८६ के फाल्गुन मास में ही शरीर की वृद्धावस्था के कारण रतलाम में ही विराज रहे थे। अतः आप अजमेर, से नसीराबाद विजयनगर, गुलाबपुरा, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, निम्बाहेड़ा, नीमच, मन्दसौर और जावरा आदि क्षेत्रों में विचरते हुए, रतलाम शहर में पधार गये। इसके पहले, जब कि आप मन्दसौर पधारे थे, तब वहाँ रतलाम के श्री संघ की ओर से आगामी चातुर्मास गुरुवर्य श्री नन्दलालजी महाराज की सेवा में रतलाम में ही करने के लिये एक आग्रह भरा विनतीपत्र मन्दसौर संघ के पास पहुँच चुका था, और अब फिर चरित्र-नायकजी ने रतलाम पधारते ही वहाँ के श्री संघ की पुनः अत्यन्त आग्रह भरी विनती देख कर श्री गुरुदेव की आज्ञा से सं० १६६० का चातुर्मास रतलाम में किया। इस चातुर्मास में यहाँ के श्री संघ में परस्पर अच्छा संगठन रहा। चरित्रनायकजी के उपदेश से धर्म-वृद्धि ज्ञान प्रभावना और तपस्यादि भी यथेष्ठ हुई। सेठ श्री धूलचन्दजी भण्डारी, चांदमलजी गांधी, लक्ष्मीचन्दजी सुणोत वर्धमानजी पीतलिया, बाल

तत्र स्थले सम्भृतपूरुषाणां, गर्दं समाकर्ण्यपुराङ्गनानाम् ।
आचार्यनीता तृपिते क्षणानामेवं विधं चेष्टितमाविरास ॥
अट्टालमारोहति किञ्च फाल निलोल पाद ललनासमूहे ।
पाणिन्धमत्वेन बभूव भङ्गः परस्परं काञ्चनकङ्कणानाम् ॥

चन्दजी श्रीश्रीमाल केशरीमलजी गादिया, जीतमलजी बोथरा, नन्दरामजी चौथमलजी श्रीश्रीमाल, चाँदमलजी बोहरा, जीतमलजी बाणादिया प्रभृति संघ के अग्रगण्य श्रावकों एवं श्राविकाओं ने श्रीचरित्रनायकजी की अत्यधिक सेवा भक्ति करके ज्ञान-सम्पादन किया।

पाठको! हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी म० को अजमेर में सर्वानुमति से अखिल भारतवर्षीय पूज्यपाद मुनि-मण्डल द्वारा पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० की सम्प्रदाय के लिये उपाध्याय का पद मिला था। तथापि आपको उसका किंचित् भी अभिमान नहीं था।

पाठको! समय की विचित्रता के कारण कभी कुछ का कुछ बन जाया करता है। जगत्-विख्यात प्रातःस्मरणीय पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज सा० की सम्प्रदाय में किन्हीं कारणों से दो दल हो गये थे। इन दोनों दलों में परस्पर सुसम्बन्ध स्थापित करने के लिये कई स्थानों पर कई बार प्रयत्न किया गया। किन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब शास्त्र विशारद बाल-ब्रह्मचारी श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री मन्नालालजी म० के सद् प्रयास से अजमेर में बृहत् साधु-सम्मेलन के समय इस पारस्परिक वैमनस्य का अन्त हो गया था। अर्थात् पूज्य श्री मन्नालालजी म० और पूज्य श्री जवाहिरलालजी म० इन दोनों पूज्यों के सम्प्रदायों में परस्पर सुलह हो गई थी। और दोनों पक्षों के मुनियों में परस्पर वन्दना व्यवहार और आहार-पानी आदि चालू हो गया था। इस प्रकार पूज्य श्री मन्नालालजी म० ने संघ कायम करके अखण्ड

नार्योप्रभुः स्फाटिककुट्टमाग्रसुवर्णवातायनसन्निविष्टाः ।
आकाशमार्गेण मुनीन्द्रचीता गता इव स्वर्वनिता निमानैः ।
आस्याय हास्या नयनेपुलास्या सिन्दूरविन्दूदयशोभिभाला
तुस्ताव स्त्रीजनपङ्क्तिरार्यं पूज्यं क्षमासागरकं मुनीशम् ॥

यश प्राप्त कर लिया था। अजमेर के मुनि-सम्मेलन का कार्य-क्रम पूर्ण होने के पश्चात् आप मुनियों के कन्धों, डोली में बैठ कर ब्यावर शहर में पधारे। वहाँ पर आपके शरीर में यकायक असाता-वेदनी कर्म का उदय हुआ। इसके उपस्थित होने के पूर्व ही आपने अपने कर्त्तव्यों की आलोचना योग्य मुनियों के सम्मुख कर ली थी। प्रमुख मुनियों ने यथ अवसर देख कर आपको समाधिसथारा (आजीवन अनशन व्रत) करवा दिया था। थोड़ी ही देर के पश्चात् शान्ति पूर्वक श्वासोश्वास लेकर आपने अपने इस भौतिक शरीर को सदा के लिये छोड़ दिया। और आपकी आत्मा दिव्य गति को प्राप्त हो गई। अर्थात् आषाढ कृष्णा द्वादशी के दिन आपका स्वर्गवास ब्यावर में हो गया।

इधर रतलाम में हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी म० ने चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् विहार नहीं किया। और आप गुरुवर्य श्री जी की सेवा में रतलाम ही में विराजमान रहे, आपको स्वप्न में भी कभी यह विचार उत्पन्न नहीं होता था कि मुझे भी आचार्य पद मिले तो अत्युत्तम हो। परन्तु भविष्य में क्या क्या होने वाला है? यह तो आगम विहारी(ज्ञानी)के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता है। अस्तु

फाल्गुन शुक्ला ३ का सुखद मगल प्रभात था। चरित्रनायकजी प्रति लेखन गुरु वन्दन स्वाध्याय आदि करके शौच निवृत्ति के लिये

भावार्थ—आचार्य-पदारोहण समारोह-जनित, गगन भेदी जय घोष को श्रवण करके नगर की महिलाएँ आचार्य श्री के दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो उठीं। और वे दर्शन की चेष्टा करने लगीं। उन झरोखों में बैठी हुई महिलाओं के सुवर्ण-कंकणों के पारस्परिक-संघर्ष से रम्य शब्द उत्पन्न हो रहा था। उस समय वे सौभाग्य सिन्दुर बिन्दु से सुशोभित हँस-मुखी महिलाएँ मुनिनाथ की स्तुति में लीन थीं।

शहर से बाहर कुछ दूर पधारे थे। जब आप सदैव की भाँति शौचादि से निवृत्त हो स्थान पर पधारे, तो वहाँ पर आप क्या देखते हैं, कि साधु साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं से व्याख्यान का यह विशाल स्थान खचाखच भरा हुआ है। आप श्री को बाहर से पधारते देख कर समस्त उपस्थित चतुर्विध श्री संघ ने खड़े होकर स्वागत सत्कार और विनय पूर्वक आपके प्रति बहुमान प्रकट किया। अचानक इतनी विशाल मानव-सभा देख कर आप अपने हृदय में विचार करने लगे, कि आज गुरुवर्य श्री के समीप चतुर्विध श्री संघ का यह बृहत् समूह क्यों एकत्रित हुआ है। इस महत्व पूर्ण कार्य का गुप्त भेद आपको किसी ने भी नहीं बताया था। सदैव की भाँति व्याख्यान देने के लिये आप अपने पट्टस्थ आसन पर आकर विराजमान हुए। उस समय आपके पूजनीय गुरु वर्य श्री ने व्याख्यान में पधार कर अपने पवित्र मुखारविन्द से फरमाया कि "हे देवानुप्रिय! मैं आज चतुर्विध श्री संघ की सर्वानुमति से संघ के समक्ष श्री खूबचन्दजी म० को अपने हाथों से आचार्य पद द्वारा अलंकृत करते हुए पंचम पट्टस्थ स्वर्गीय पूज्य श्री मन्नालालजी म० के स्थान पर इन्हें षष्टम पट्टाधिकारी घोषित करता हूँ। आज से चतुर्विध श्री संघ आपकी आज्ञा में रहेगा।" स्थविर मुनि श्री के इस वक्तव्य

उपाध्यायपदभूपः सहसमलजी मुनीन्द्रवर्योऽभूत् ॥३४४॥
अलब्धगणिपदवीं यः प्यारेलालो योगनिष्ठसाधुः ।
सुप्रवर्तकविरुद प्राप मोतीलालः सदात्मा ॥३४५।
एव प्रवर्तकोऽभू च्छ्रीमान् हजारीमलजो पूतात्मा ।
अविदत्सलाहकार विरुद श्रीकेशरिमल्ल मुनिः ॥ ३४६ ॥
आचार्यपदवी वेदितो मुनिखूबचन्द्रसुशान्तिभाक् ।

इस आचार्य पद की शुभ घोषणा के हर्षोपलक्ष में रतलाम श्री सघ द्वारा उपस्थित जनता में लड्डू बताशे की प्रभावना बाँटी गई । सेवकों को पगडियों का उपहार प्रदान किया गया । पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० को आचार्य पद किस प्रकार और क्यों दिया गया इस सब विषय का उल्लेख थायुवाचार्यादिपदोत्सव नामक पुस्तक में भली भाति किया गया है ।

चरित्रनायकजी ने पज्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही सर्व प्रथम अपनी नेश्राय (आज्ञा) में विचरने वाले मुनिराजों एव महासतियों के लिए नियमोपनियम निर्माण करने का आदेश अपने दक्ष, योग्य और विचारशील मुनिवरों को दिया । तदनुसार जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता प० मुनि श्री० चौथमलजी म०आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुनियों के प्रयास से देश कालानुसार शीघ्र ही ऐसे नियमोपनियम तैयार हुए, कि जिनसे साम्प्रदायिक गौरव की दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि होती रहे ।

तत्पश्चात् श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री खूबचन्द जी म० ने फरमाया, कि मैं यह चाहता हू कि मेरे सामने स्वसम्प्रदाय के सभी मुनियों का सम्मेलन एक बार शीघ्र ही हो जाय । अतएव आपकी इस आज्ञानुसार शहर

जिन-दिवाकर इह चौथमलश्चारुवरवाणीमयर्व् ॥
युवाचार्यपदसमलंकृतो ध्यानोछगनलालजित् ।
उपाध्यायविरुदसमर्चितोमुनिसहसमल्लमुनियमगः ॥३४७॥

रतलाम में स्थविर पंडित मुनि श्री नंदलाल जी म० एवं आप श्री की सेवा में स प्रदाय के समस्त मुनि उपस्थित हुए। और वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में सम्मेलन हुआ अपनी सम्प्रदाय के समस्त उपस्थित मुनियों के समक्ष आचार्य श्री जी ने फरमाया, कि मेरी वृद्धावस्था है अतएव आप मुनिवरों की सेवा (देख भाल) करने के निमित्त मैं अपनी उपस्थिति में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना चाहता हूं। आप सर्व मुनिगण इस पद के योग्य मुनिवर को ढूँढ कर उनका नाम प्रकट करें। इसी प्रकार उपाध्याय, गणी और प्रवर्तक पद के लिए भी आप नाम प्रकट करें। तब आचार्य श्री की आज्ञा से और चतुर्विध संघ की सर्वानुमति से प्रसिद्धवक्ता प०मुनि श्री चौथमलजी म० का जैन दिवाकर, पंडित मुनि श्री छगनलाल जी म० का युवाचार्य, पंडित मुनि श्री सहस्रमलजी महाराज को उपाध्याय पंडित मुनि श्री प्यारचन्द जी म० का गणि तपस्वी श्री मोतीलाल जी म० और पंडित मुनि श्री हजारीमल जी म० का प्रवर्तक तथा पंडित मुनि श्री केशरीमल जी महाराज को सलाहकारक के पद से विभूषित किया जाने का पूर्ण निश्चय हुआ। इस शुभ समाचार के पहुंचते ही अनेक क्षेत्र जैसे—रामपुरा, उदयपुर, मन्दसौर, बड़ी सादड़ी, महागढ़, जावरा आदि आदि स्थानों के संघों की ओर से इन उपरोक्त पदों के प्रदान करने की क्रिया का महोत्सव अपने अपने क्षेत्रों में मनाने के लिए पूज्य श्री के चरणों में विनतियां आने लगी। अन्त में अत्यन्त आग्रह के कारण उपरोक्त पदोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने का सौभाग्य मद-

गणिमञ्जितोऽभूत्प्यारचन्द्रः प्रवर्धीगीडयो जैनैः ।
बृहत् प्रवर्तक इति मोतिलालो वर्तते मुनिपश्च यः ।
प्रवर्तकोहिहजारिमलजीहटितमतिरचलासुरसः ।
मलाहकारपदस्थितोमुनिकेशरिमल्लसुभगं भाक् ॥३४८॥

सौर नगर को ही प्राप्त हुआ। मन्दसौर श्री संघ ने आचार्य श्री के चरणों में रतलाम आकर आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने के लिये आग्रह पूर्वक नम्र निवेदन भी किया। तब स्थविर पद-विभूषित पं० रत्न मुनि श्री नन्दलालजी महाराज सा० ने भी मन्दसौर संघ के पूर्वतं आग्रह को देख कर आचार्य श्री जी ने फरमाया, कि आपका चातुर्मास मन्दसौर ही में होना चाहिये। गुरुवर्य श्री जी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके तथा संघ की विनती पर ध्यान रखकर सं० १९९१ का चातुर्मास हमारे चरित्रनायकजी ने मन्दसौर में करना ही निश्चय किया। और तदनुसार आप रतलाम से विहार कर जावरा पधारे। जावरा के श्री संघ द्वारा आपका बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ। आप के शुभागमन के उपलक्ष में पंचायती नोकर, थाने के दारोगे और स्कूल के मास्टर को पगड़ियां का उपहार प्रदान किया गया। बतासों की प्रभावना बाँटी गई। जावरा में कुछ दिन विराज कर फिर आपने वहां से विहार किया। कलालिया, धोधर जमरदलोदा, रेलदलोदा आदि ग्रामों में होते हुए आप मन्दसौर पधारे। श्री संघ ने आपका बड़े ही समारोह के साथ स्वागत किया। जामुन वाले विशाल जैन भवन में आपने चातुर्मास किया। चातुर्मास में धर्मवृद्धि एवं तपस्या बहुत हुई। बेला, तेला, चोला, पचोलो अठाइ, ग्यारह, पन्द्रह आदि

भावार्थ—उस समय चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्य श्री के कर कमलों द्वारा तत्ववेत्ता सुदृढ ज्ञानी, योगनिष्ट, पवित्रात्मा सुशील स्वभावी, शांति स्वरूप शुद्धाचारी और तपस्वी प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चोथमल जी महाराज को 'जैन दिवाकर' पद से विभूषित किये गये। इसी प्रकार मुनि श्री छगनलालजी म० को

तपस्या के कई थोक हुए। तपस्या और दया उपवास की पचरंगियाँ हुई। अन्यान्य शहरों और गावों के स्त्री पुरुष आचार्य श्री के दर्शनार्थ आए। जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई मन्दसोर का चातुर्मास सानंद समाप्त करके आपने रामपुरा की तरफ विहार किया। क्योंकि वहाँ के श्री संघ की आग्रह भरी विनती थी। अतः मल्हारगढ़ नारायणगढ़, म्हागढ़, मनासा, भाटखेड़ी, कुकड़ो और कुकड़ेश्वर आदि २ कई क्षेत्रों में अपनी पियूषधारा वाणी से भव्य प्राणियों के हृदय प्रदेश को सिंचित करते हुए आपका शुभागमन रामपुरा में हुआ। उस दिन आपके स्वागतार्थ लगभग तीन चार मील तक संघ के प्रायः छोटे बड़े आबालवृद्ध नर नारियों का समूह सम्मुख पहुँचा था। ग्राम में पहुँचते पहुँचते जनता एक विशाल जुलूस के रूप में एकत्रित हो गई थी। यह जुलूस मुख्य मुख्य मार्गों से होता हुआ पंचायती भवन में समाप्त हुआ था। पूज्य श्री इसी पंचायती भवन में विराजमान् हुए। प्रति दिन आपके अमृतोपम सदुपदेश को श्रवण करने के लिये जैन जैनेतरों की संख्या उमड़ उमड़ कर आती थी। अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान हुए। वहाँ पर सजीत का श्री संघ, श्री चरित्रनायकजी के चरणों में उपस्थित हुआ। और उसने अपने क्षेत्रों में पधारने की आपसे आग्रह पूर्वक विनती की तब दयालु आचार्य श्री जी ने सजीत संघ की विनती को

युवाचार्य, मुनि श्री सहस्रमल जी म० को उपाध्याय, मुनि श्री प्यारचन्द जी म० को गणि, मुनि श्री मोतीलाल जी म० को बड़े प्रवर्तक, मुनि श्री हजारीमल जी म० को छोटे प्रवर्तक और मुनि श्री केशरीमल जी महाराज को सलाहकारक के पद से अलङ्कृत किये गये।

श्रीहुक्मिचन्द्रेति पवित्रगच्छे तथा मनालालयतीन्द्रपाटे ।
विभूषयन्तेऽघतपोऽद्भुभिर्यैकुर्वन्तिविध्वस्तमथान्धकारम् ३४६
वादीभपञ्चाननभव्यमूर्तिर्दिगन्तदेवार्चितशुभ्रकीर्तिः ।
जिनेन्द्रवाणीकुमुदस्य चन्द्रः संदृश्यतेयोगपखूबचन्द्रः॥३५०॥

स्वीकृत करके उधर विहार किया। सजीत श्री सघ का उत्साह भी बड़ा ही प्रशंसनीय था। स्वयंसेवक गण हाथ में जैन सभा का झंडा लेकर तीन-चार माइल तक पूज्य श्री की पेशवाई में उपस्थित हुए। और बड़े ही शानदार स्वागत सहित पूज्य श्री का पदार्पण जैन भवन में करवाया प्रति दिन सार्वजनिक व्याख्यान होते थे। जैन और जैनेतरों की उपस्थिति अत्यधिक होती थी। तहसीलदार सा०, कामूगो सा०, चीफ सा० और डाक्टर सा० आदि बड़े-बड़े राजकर्मचारी एवं गाँव के प्रतिष्ठित सज्जन गण भी प्रति दिन व्याख्यान में भाग लेते थे। आचार्य श्री का व्याख्यान प्रति दिन भिन्न-भिन्न विषयों पर जैसे मनुष्य कर्त्तव्य, मनुष्य जन्म की दुर्लभता, दुर्व्यसन-त्याग, कर्त्तव्य परायणता, धर्मावलम्बी बनो, आदि-आदि विषयों पर बड़े ही प्रभावशाली होते थे। आप श्री के इन असरकारक सदुपदेशों के प्रभाव से अनेकों स्त्री पुरुषों ने रात्रि-भोजन, अनछाना पानी, कन्द-मूल एवं हरी, दुर्व्यसन आदि का त्याग किया। यहां से विहार कर आप

पूज्यं स्वदेशे भवतीह राज्यं ज्ञानं त्रिलोके ऽपि सदर्चनीयम् ।
ज्ञानं विवेकाय मदाय राज्यं ततो न ते तुल्यगुणे भवेताम् ॥३५१

शक्योवशीकर्तुमिभोऽतिमत्तः सिंहः फणीन्द्रः कुपितो नरेन्द्रः ।
ज्ञानेनहीनो न पुनः कथंचिदित्यस्य दूरे नभवन्ति सन्तः ॥३५२॥

परोपदेशं स्वहितोपकारं ज्ञानेन देही वितनोति लोके ।
जहाति दोषं श्रयते गुणांश्च ज्ञानं जनैस्तेन समर्चनीयम् ॥३५३

भावार्थ— प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० के गच्छ में पूज्य श्री मन्नालाल जी म० के सम्प्र

झालरी और नारायणगढ होते हुए मन्दसौर पधारे। मंदसौर में युवाचार्यादि पदोत्सव मनाने की बड़े ही ज़ोरों से तैयारियाँ हो रही थी । कार्य को सुचारु रूप से सचालन करने के लिए छोटी-बड़ी कई कमेटियाँ नियुक्त की गई थी। श्री संघ की ओर से आचार्य श्री के चरणों में अपने मुनि-मण्डल सहित मन्दसौर पधारने की आग्रह भरी विनती कई बार पहुंची थी। अतः आचार्य श्री जी एवं प्रसिद्ध वक्ता जी आदि प्रायः साम्प्रदायिक सभी साधु साध्वियों ने पधारने की कृपा की थी । इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री अमरसिंह जी म० की सतियाँ जी म० श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज की सतियाँ जी म० और कोटा सम्प्रदाय की सतियां जी म० आदि कुल १०१ साधु साध्वियाँ जी म० उस महोत्सव के शुभ प्रसंग पर उपस्थित हुए थे। माघ शुक्ला त्रयोदशी को चतुर्विध संघ के समक्ष पदारोहण का कार्य प्रेम सानन्द सम्पन्न हुआ। महोत्सव सम्बन्धी विशेष वर्णन 'युवाचार्यादि पदोत्सव' में पढ़िये ॥

दानुयायी जितने भी सन्त विद्यमान हैं। वे सब अपने तप रूप सूर्य की प्रखर किरणों द्वारा पापान्धकार का सर्वनाश कर रहे हैं ॥३४६॥ हस्ती रूपी विवादियों के लिए सिंह के समान, दिग्दिगन्त व्यापी कीर्ति के समूह, मुनि श्री खूबचन्द्र जी महाराज भगवान् महावीर प्रभु की निर्दोष वाणी रूपी कुमोदिनी के लिए चन्द्र की तुलना को धारण करते हैं ॥३५०॥ राजा तो केवल अपने देश में ही पूजनीय माना जाता है। किंतु ज्ञानी पुरुष तो त्रिलोक-पूज्य है। ज्ञान से विवेक उत्पन्न होता है। और राज्य से मद। इसलिए राज्य और ज्ञान, दोनों की परस्पर समानता किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है ३५१ ज्ञान के बल से मदोन्मत्त हाथी, सिंह, साँप, और क्रोधी राजा भी वशीभूत हो जाते हैं। यही कारण है, कि ज्ञानी और विवेकी पुरुषों का परस्पर प्रेम पूर्वक सम्मेलन होता रहा है। अतएव जो सन्त पुरुष होते हैं। वे सदैव विवेकयुक्त ज्ञान से शोभायमान रहते हैं ॥३५२॥ ज्ञान से ही मनुष्य परोपकार, परोपदेश और आत्म कल्याण कर सकता है। इस ज्ञान ही के बल से मनुष्य दोषों का परित्याग करके सद्गुणों को ग्रहण करता है। यही कारण है, कि ज्ञानी पुरुष जगत् के सभी प्राणियों द्वारा पूजनीय माने गये हैं ॥३५३॥





श्री मान धर्म प्रेमी लाला अमानतरायजी के सुपुत्र
उत्साही युवक श्री निरंजन सिंह जी जैन,
कटराधूलिया चान्दनी चौक देहली।

मेवाड़देशान्तर मांगरोलग्रामस्थितः श्रीयुत दीपचन्द्रः ।
स्वषोडशाब्दे वयसि प्रभावैर्दीक्षामवर्चिप्टमहोत्सवेन॥२६०॥

भावार्थ—ब्यावर में प्रथम श्रीमान् सेठ कुन्दनलालजी सा० के सुपुत्र श्री लालचंद जी सा० के बगीचे में कुछ समय व्यतीत करके आप शहर के एक विशाल भव्य भवन "कुन्दन भवन" में सवत् १६६२ का चातुर्मास व्यतीत करने के लिए विराजमान हुए ॥२५८॥ चातुर्मास में धर्म-ध्यान एवं तपश्चर्या अच्छी हुई। तपस्वी श्री छ्ग्गालालजी म० ने गर्म जल के आधार से ४६ दिन की तपस्या की। जिसकी पूर्ति पर यथेष्ट धर्मोद्योत हुआ ॥२५६॥ यहा पर मेवाड़ देशान्तर्गत मांगरोल ग्राम निवासी श्री दीपचन्द्रजी ने अपनी सोलह वर्ष की अवस्था में परम वैराग्य भावना से दीक्षा ग्रहण की ॥२६०॥

काये तदा तत्र मुनेर्बभूव दौर्बल्यतः शीतनिशा"हेतोः ।
ज्वरोमहान्किन्तुसुधर्मभावस्तस्यौजनान्नोघमलंददान॥२६१
येषा बभूवुर्जिनपूज्यभावास्तान्द्रा दशामून् जिनधर्मलीनान् ।
स्वसम्प्रदायस्थचरान्मुनीशोऽद्रीविष्टतान्पञ्चदिनं वसित्वा॥

भावार्थ—चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् आपने मसूदा, राताकोट, विजयनगर, गुलाबपुरा, हुर्डा, भिणाय, टाटोटी, सरवाड़, केकडी, जूनिया आदि अनेक छोटे बड़े क्षेत्रों मे धर्म-प्रचार करते हुए मालपुरा (जयपुर) मे पधारे। वहा आपके शरीर में

महाराज जब यहा से विहार करने की शीघ्रता करने लगे तो एक दिन अकस्मात् आपको १०३ डिग्री तक ज्वर हो आया। ऐसी स्थिति मे भी आप साहसपूर्वक शातिनाथ भगवान् का स्मरण करते हुए कर्म प्रकृति के भेद पर विचार करते रहे। ज्वर-जनित विशेष कष्ट के कारण आपको वहा पचीस दिन तक ठहरना पड़ा। करजू के नर-नारी बडे ही भक्त और सेवाभावी थे। उन्होंने हर प्रकार से आचार्य श्री की बडी ही सेवाभक्ति की। दया, दान, व्रत और पचक्खाणादि भी बहुत हुए। धर्म ध्यान और भक्ति-भावना उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती गई। कुछ दिनों के पश्चात् आचार्य श्री के शरीर मे शाति हुई। करजू से विहार कर के आप गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० की सेवा मे शहर रतलाम पधारे। यहा पधारते ही आपके चरणों में अनेक शहरों व गावों के श्री सघों की ओर से अपने-अपने शहर मे चतुर्मास करने के सम्बन्ध मे विनतिया आने लगी। इन सब विनतियों मे से ब्यावर शहर के श्री संघ की विनती बड़ी ही आग्रह पूर्ण और चिरकालीन थी। अत स० १९६२ के वर्ष का चातुर्मास आपने ब्यावर मे किया ॥३५५-५६ ५७॥

तत्र स्थले कुन्दनमल्लसुनुः श्रेष्ठोऽभिजापूजितलालचन्द्रः।
प्रतिष्ठिपत्तस्यसुवाटिकायां पश्चाद्वात्सीच्छुचिकुन्दसद्मे॥३५८
उपोष्यशास्त्राब्धिदिनानि तत्र प्रेम्णा छवालालतपः प्रभावी।
पक्वाम्बुपानाश्रयतो जिनेन्द्रपादाब्जभृङ्गसमतीतयच्च ॥३५६॥

तदान्यगादीयदि मोलवं वै, यास्याम्यवश्यं नगरेऽजमेरे।
धर्मस्य वाक्यैः शुभतत्त्वपूर्णैः, संनन्दयामीनिनचोनिचिन्तन
रुग्णोऽपि दौर्बल्ययुतोऽपिचार्यै,ग्रीष्मामितप्त समयं न चिन्तन्
काठिन्यपूर्णे पथि संजगाहे, स्वकीयदत्तं वचनं विचिन्तन्॥
धर्मोपदेशः भरता सुधाया, सख्यं दधानः परितः सभायाम्
जयैपु ताया बहुभि. सदैव श्रीपाठशालीयगत बभूव ॥३७०॥
मासैककल्प जिनधर्मतत्त्व दिशन्‌टिटीके जयपतनं तद्।
मार्गेऽनेकान्नगरान् भरिभिः सिञ्चन्स्व धर्माम्बुपयोमुचा सः॥

भावार्थ—वहा से विहार कर मार्ग मे अनेक प्रकार के परिषहों को सहन करते हुए आप जयपुर श्री सघ के विशेष आग्रह से प्रेरित होकर जयपुर पधारे। वहा आपको मास कल्प के दिनों से भी अधिक समय तक ठहरना पड़ा। क्योंकि आपके शरीर में बीमारी के कारण विशेष कमजोरी उत्पन्न हो गई थी। योग्य वैद्यो के औपधोपचार द्वारा आपका स्वास्थ्य जब ठीक हुआ तब आप वहा से विहार करने लगे, तो जयपुर श्री सघ ने आगामी चातुर्मास अपने ही यहा करने के सबध मे बडी ही आग्रह पूर्वक प्रार्थना आप से की। उधर देहली, टोंक, अलवर आदि क्षेत्रो की विनतिया चातुर्मास के लिए आही रही थी। किन्तु आखिरकार जयपुर श्री सघ के भाग्योदय से पूज्य श्री ने सवत् १९९३ का चातुर्मास शहर जयपुर मे करने की स्वीकृति

कमज़ोरी और सर्दी के कारण बुखार की शिकायत रहती थी। मालपुरा में स्थानकवासी ओसवालों के १०-१२ घर थे। परन्तु मुनि अभाव से प्राय ये सब के सब घर मूर्तिपूजक बनने वाले थे। अत परम दयालु चरित्रनायकजी महाराज ने वहा पर ५ ६ रात्रि विराज कर उन सभी घर वालों को ज्ञान का बोध प्रदान किया। और उन्हें पुन आर्य जैन धर्म की दीक्षा और शिक्षा दे कर कट्टर स्थानकवासी धर्म के अनुयायी बनाये। वहा पर सुबह शाम दोनों समय व्याख्यान होते थे। श्रोताओं की सख्या लगभग ५०० हो जाती थी ॥३६१-३६२॥

परीषहान् कानि सोढमानस्ततः प्रतस्थे जयपत्तनं सः।
रोगैर्विशेषैर्ग्रसितस्त्वगत्या, तस्थौतदाभेषजसेवनाय ॥३६३॥
स्वस्थे प्रजाते यततेस्मचार्यं गन्तुं मुनीशोजनसंघकेन
पर्जन्यकाल व्यतितुं मुनीशः, संतुस्तुवे पूर्णविनीतभावैः ३६४
समाप्य वर्षा समयं ततश्च स्वाशीर्वचासह्मवीरचेद्धम्।
भिणायदेशं शुचिभूतपवित्रा, मालपुरमैत् जनि भद्रकारी ३६५
तत्रस्थसंघस्तुतिभिः प्रसन्नः, प्रजन्यकालं जयपत्तने च।
शुभंस्व्यकार्षाद्वीयतितुं स्वशिष्यैः, शीलं सलीलं परिबोधनाय
नेत्राक भूखण्डमहीमितान्ते पुर्यां नरायामजमेरसंघः।
प्रार्थां दधे स्वस्य पराय तं सः, वर्षाकृते पूर्णतया विनीतः ३६७

अजमेर शहर की भूमि को पावन किया। वहां जैन पाठशाला में प्रतिदिन आपके व्याख्यान होते थे। श्रोता समाज की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। वहा पर लगभग एक मास ठहर कर आपने जनता को धर्म का मर्म समझाया। फिर वहा से विहार कर मदनगंज, किशनगढ, बांतरी, परासोली तथा भिणाय देशान्तर्गत मसूदा आदि गांवों में निर्ग्रंथ वाणी का प्रवचन करते हुए संवत् १६६३ का चातुर्मास मनाने के लिए जयपुर पधार गये॥३६३-७१॥

गुणग्रहाकक्षितिवत्सरीयं, घनागम श्रीजयपत्तनेऽस्मिन् ।
आचार्यवर्यश्च ततोऽत्तयिष्ट, दिनेदिने धर्मपयः प्रवाहैः॥३७२॥

भावार्थ—जयपुर के चातुर्मास में धर्म प्रभावना बहुत ही अच्छी हुई। नर नारियों में तपस्या की पांच पचरंगियां* और २१ अट्ठाइयां हुईं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की विभिन्न तपस्याएँ हुईं। चारों मास बाहर गांव से आने वाले दर्शनार्थी स्त्री पुरुषों का तांता बंधा रहा॥३७२॥

मासे श्रावणिकेऽसिते तिथियुते पक्षे द्वितीये शुभे,
ध्यात्वा श्रीजिनपूतपादकमलं कालेऽपराह्णे तथा।

---

* उपवास, बेला, तेला, चौला और पचोला इन पांच प्रकार की तपश्चर्याओं में से प्रत्येक तपश्चर्या को क्रमशः पांच पांच व्यक्ति धारण करके तप व्रत में लीन हो जाय। इस प्रकार इन पच्चीसों व्यक्तियों द्वारा जो तप आराधना की जाती है। उसे पचरंगी तपस्या कहते हैं।

प्रदान कर दी। श्री चरित्रनायकजी महाराज का गत चातुर्मास ब्यावर मे था। उस समय अजमेर के नर-नारियों ने दर्शनार्थ ब्यावर पहुँचकर आपकी सेवा मे अजमेर पधारने की बहुत ही आग्रह भरी विनति की थी। तब पूज्य श्री ने यह फरमाया था, कि "यदि मैं मालव देश की ओर प्रस्थान करूंगा तो अजमेर की भूमि के स्पर्श किये बिना उधर नहीं जाऊँगा।" अब सवत् १६६३ के चातुर्मास के लिए जब आपने जयपुर श्री सघ को स्वीकृति प्रदान करदी तो अब आपको फिर खयाल हुआ, कि "मैंने अजमेर जाने का वचन वहा के निवासियों को दे रक्खा है। अतः चातुर्मास के पहले ही अपने इस बचन को निभा लेना ठीक है। पाठको! पच महाव्रत धारी मुनियों के लिए शास्त्रों मे, नियमित आहार-विहार तथा भाषा की प्रमाणिकता रखने का विधान भगवान् ने फरमाया है। इसी विधान को लक्ष मे रख कर हमारे चरित्रनायक जी ने अजमेर जाने का विचार प्रकट किया। तब जयपुर के श्री सघ ने आपकी सेवा मे नम्र निवेदन किया, कि 'गुरुदेव! आपका शरीर इस समय विशेष कमजोर है। तथा गर्मी भी विशेष पडने लगी है। तथा मार्ग भी कठिन है। अत आप अपने इस ग्रीष्म कालीन उग्र विहार के विचार को स्थगित करने की कृपा कीजिएगा।" श्री सघ के इस निवेदन को आपने सुन तो लिया। किंतु आपको अपने बचन पालन का पूर्णतया ध्यान था। अत आपने अपनी शारीरिक असमर्थता, ग्रीष्म कालीन आताप तथा मार्ग की कठिनाई को सहन करते हुए भी

अजमेर शहर की भूमि को पावन किया। वहां जैन पाठशाला में प्रतिदिन आपके व्याख्यान होते थे। श्रोता समाज की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। वहां पर लगभग एक मास ठहर कर आपने जनता को धर्म का मर्म समझाया। फिर वहां से विहार कर मदनगंज, किशनगढ़, दांतरी, परासोली तथा भिणाय देशान्तर्गत मसूदा आदि ग्रामों में निर्ग्रंथ वाणी का प्रवचन करते हुए संवत् १६६३ का चातुर्मास मनाने के लिए जयपुर पधार गये॥३६३ ७१॥

गुणग्राहकचित्तवत्सरीप, घनागम श्रीजयपत्तनेऽस्मिन् ।
आचार्यवर्यैश्च ततोऽतयिष्ट, दिनेदिने धर्मपयः प्रवाहै॥३७२॥

भावार्थ—जयपुर के चातुर्मास में धर्म प्रभावना बहुत ही अच्छी हुई। नर नारियों में तपस्या की पांच पचरंगियां* और २१ अट्ठाइयां हुई। इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की विभिन्न तपस्याएँ हुई। चारों मास बाहर गांव से आने वाले दर्शनार्थी स्त्री पुरुषों का तांता बंधा रहा॥ ३७२ ॥

मासे श्रावणिकेऽसिते निधियुते पक्षे द्वितीये शुभे,
ध्यात्वा श्रीजिनपूतपादकमलं कालेऽपराह्णे तथा।

---

* उपवास, बेला, तेला, चोला और पचोला इन पांच प्रकार की तपश्चर्याओं में से प्रत्येक तपश्चर्या को क्रमशः पांच पांच व्यक्ति धारण करके तप व्रत में लीन हो जाय। इस प्रकार इन पच्चीसों व्यक्तियों द्वारा जो तप आराधना की जाती है। उसे पचरंगी तपस्या कहते हैं।

संथारासहितप्रसन्नमनसा ग्राध्र्यत्तमायाच नाम्,
धृत्वा दिव्यसमाधिमैद्यतिनरः श्रीनन्दलालोदिवम् ॥३७३॥
चन्द्रादित्य पुरन्दर चितिधर श्रीकण्ठ सीर्मादयः,
ये कीर्तिद्युतिकान्ति धी धनवल प्रख्यातपुण्योदयाः ।
स्वे स्वेतेऽपि कृतान्तदन्तकलिताः काले व्रजन्ति चयम्,
किञ्चान्यस्य कथेति चारुमतयो धर्म मतिं धीयताम् ॥३७४॥
सुग्रीवागद नीलमारुतसुतस्पष्टैः कृताराधनो,
रामो येन निनाशितस्त्रि भुवन प्रख्यात कीर्तिध्वजः ।
मृत्तोस्तस्य परेषु देहिषु कथा कास्तीति भो ज्ञायताम्,
कात्रास्थानयतोद्विषं हि शक्रो, विर्यायकः श्रोतसः ॥३७५॥

भावार्थ—इसी वर्ष रतलाम मे श्रावण कृष्णा द्वितीया सोमवार के दिन सायकाल के समय चरित्रनायकजी के गुरुजी वादीमान-मर्दक पडित मुनि श्री नदलालजी महाराज ने श्री जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलो मे भक्तिपूर्वक सथारा धारण करते हुए अपना यह भौतिक शरीर त्याग दिया। आपके देहावसान के समाचार तार द्वारा जब चरित्रनायकजी के पास पहुँचे तो चरित्रनायकजी के हृदय मे वज्राघात जैसा बडा ही दुःख हुआ। आपने अपने पूज्य गुरुदेव की अतिम सेवा से यूँ वचित रहने का तथा अचानक स्वर्गगमन होने का बडा ही खेद प्रकट किया। और अपने शोक सतप्त मुनि मण्डल से आपने कहा कि "मुनिराजो !

काल की गति बड़ी विचित्र है। चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, मानवेन्द्र, सौंदर्य सम्पन्न, प्रभावशाली, बुद्धिमान एवं धनवान् आदि किसी को भी यह कराल काल नहीं छोड़ता है। इसलिए शाश्वत् प्राणियों को धर्माराधना में अवश्य ही तत्पर होना चाहिए। सुग्रीव, अंगद, नील और हनुमान आदि योद्धाओं द्वारा सेवित प्रख्यात् कीर्ति श्री रामचन्द्रजी आदि बड़े-बड़े महापुरुषों को भी इस मृत्यु ने नहीं छोड़ा तो फिर औरों की तो बात ही क्या है? ॥ ३७३-३७४-३७५ ॥

पथि पान्थगणस्य यथा व्रजतो, भवति स्थितिरस्थितिरप्येतरौ
जनताध्वनि जीवगणस्यतथा,जननमरणसंकटकुले॥३७६॥

भावार्थ—जैसे पथिकों की विश्रान्ति के लिए जिस वृक्ष के नीचे स्थिति होती है। उसी वृक्ष से गमन करना भी नियत है। इसी प्रकार इस संसार में जो प्राणी जन्म ग्रहण करता है वह मृत्यु को भी अवश्य ही प्राप्त करता है ॥ ३७६ ॥

उदितः समयः श्रयतेऽस्तमयं, सकलाजलधि समुपैतिनदी
सकलानिफलानिपतन्तितरोः, कृतकः सकलो लभतेविलयम्॥

भावार्थ—जिस प्रकार समय उदय होकर अस्त होता है। नदी वर्षा के जल से वृद्धि प्राप्त कर समुद्र में लीन हो जाती है। वृक्ष पर फल उत्पन्न हो कर समय पर गिर जाते हैं। उसी प्रकार यह आत्मा भी समय पर शरीर को ग्रहण एवं परित्याग करती रहती है ॥ ३७७ ॥

इतितरीधयः परिचिन्त्यबुधाः,सकलस्यजनस्य विनश्वरताम्
न मनागपि चेतसि संदधते, शुचमङ्गयशःसुखनाशकरम्३७८

भावार्थ—इसलिए सब पदार्थों की विनश्वरता को विचार कर के बुद्धिमान पुरुष इस भौतिक शरीर को क्षण भगुर समझते हैं। और अङ्ग यश तथा सुख के नाश करने वाले शोक को अपने हृदय में नहीं आने देते हैं ॥ ३७८ ॥

परिहायशुचकुरु धर्ममतिं, ननु धर्मसमाश्रयतो लभते।
मनुजो रुचिर दिवि दिव्यपदं, पुनरागमनमरणजयति ॥३७६॥

भावार्थ—अतएव शोक को त्याग कर धर्म मे मन को लगाओ धर्म के आश्रय से मनुष्य रुचिर दिव्यपद को प्राप्त होता है॥३७६॥

गुरुशोकसमुद्रगतसकल, निज शिष्यगणञ्च विबुध्यगिरा।
परितुष्य जिनोक्तगिरासुभयाजनशान्ति मदान्नुखूबमुनि ॥

भावार्थ—इस प्रकार हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज ने अपने गुरु वियोग से शोकाकुल मुनियों एव जन समुदाय को सतोष एव शान्ति प्रदान की॥ ३८० ॥

श्रीमान् नदलालजी महाराज का संक्षिप्त परिचय।

अस्तीन्दोरनृपालशासितमहो रम्यं सुवास्यप्रदम्,
नानापक्षिविनोदितं करझडा ग्राम शुभं तत्स्थले।
भण्डारी गतगोत्रजः शुचिमतिः श्रीरत्नचन्द्राभिधः,
तद्भार्याकुलजासुशीलपरिता श्रीराजबाईति सा ॥३८१॥

तस्याःकुक्षिसु शुक्तितः समभवन्मुक्ताःस्त्रयः पुत्रकाः
श्रेष्ठः श्रेष्ठजवाहरः सुतनयः पुत्रोद्वितीयस्तथा ।
हीरालाल उदग्रकाव्यविशदस्तस्यानुजः सद्गुणी,
देशे राजति राजहंस इव यः श्रीनन्दलालाभिधः ॥३८२॥

भावार्थ—गुरुवर्य वादी-मान मर्दक प० मुनि श्री नन्दलाल जी म० कम्मार्दा, ग्राम के निवासी थे कम्मार्दा इन्दौर राज्यान्तर्गत एक उत्तम कृषि सम्पन्न और नयनाभिराम ग्राम है। आपके पिता श्री का नाम रतनचन्द्रजी तथा माता का नाम राजबाई था। आप के दो बड़े भाई और थे। जिनका नाम हीरालालजी तथा जवाहर लालजी था ॥३८१ ३८२॥

तृतीयपुत्रोगुणिनन्दलालोऽजनिष्टहस्तेन्दुनिधिध्रुवाब्दे,
श्रीवैक्रमे यद्दष्टिपञ्चमीसत्तिथौ नभस्ये रविवासरे वै ॥३८३॥
ईस्वीसने प्राणशरेभचन्द्रे सेप्टंबरे षोडशतारिकायाम् ।
बभूवरम्रे शुभदुन्दुभीना पयोदनादप्रतिभानिनादाः ॥३८४॥
संसारसिन्धु तरितुं सहर्षैः अम्नाधराखण्डवसुन्धराब्दे ।
ज्ञानाम्बुधारोत्थितपूतजीवस्तन्मातुलश्चैव पितापि दीक्षाम् ॥
सहोदराभ्या च तथा जनन्या सहाभ्रपक्षाम्बुदभूमितेऽब्दे ।
अजिग्रसच्छ्रीयुतनन्दलालो दीक्षा जिनेन्द्रोदितशास्त्रयुक्ताम् ॥
स्वाध्यायचारित्रतपः प्रसक्तध्यानात्मविचाररसिको जगत्याम् ।

जुहारिलालोमुनिरेंद्विवं यो नेत्रागगो भूमितहायने च ॥३८७॥
साहित्यविज्ञः कवितानिलाभीमनोज्ञः कायनिकल्पशुद्धः।
अभूद्धिरालाल उदग्रयोगी तपोदयादानशमक्षमाभूः ॥३८८॥
शीलव्रतध्यानतपः प्रभावी ज्ञानीविमोक्षाय कृतप्रयासः।
शान्तस्वभावी च गम्भीरमुद्रः निधान्मुतुष्टोमुनिनन्दलालः ॥
ब्रह्मद्विपाब्दे वयसि स्वकीये समाविशद्मुक्तिपुरीं महर्षिः।
अन्त्येष्टिकाले मनुजास्तदीये एकीनभूवगुरुभक्तिभावैः ॥

भावार्थ—श्रीयुत नन्दलालजी म० का जन्म वि० स० १६१२ भाद्रपद शुक्ला पचमी (ऋषि पचमी) तदनुसार ई० सन् १८५५ के सितम्बर महीने की १६वीं तारीख के दिन हुआ था। आपके जन्म के समय बड़ा ही आनन्द और हर्ष मनाया गया ॥३८३-८४॥ आपके पिताजी श्री रतनचन्दजी तथा मामाजी श्री देवीलालजी ने वि० सम्वत् १६१४ मे ससार समुद्र से पार होने के लिए दीक्षा ग्रहण की थी ॥३८५॥ उनके दीक्षित होने के बाद श्री नन्दलालजी ने भी अपने दोनो बड़े सगे भाई (मुनि श्री हीरालालजी और मुनि श्री जवाहरलालजी) तथा माता श्रीमती राजीबाई के साथ जिन शास्त्रानुसार स०-१६२० मे दीक्षा अगीकार की थी ॥३८६॥ उनमे से स्वाध्याय प्रेमी, चारित्र चूड़ामणि, तपोधनी, आत्म विद्या रसिक मुनि श्री जवाहरलालजी म० का स्वर्गवास विक्रम सम्वत १६७२ मे मथारा संयुक्त हुआ ॥३८७॥

साहित्य निष्णात मन वचन और काया से पवित्र तप, दया, दान, शम और क्षमा, आदि गुणों के भण्डार मुनि श्री हीरालाल जी का स्वर्गवास विक्रम संवत् १८७४ में हुआ ॥३८८॥ शीलव्रती, ध्यानी, तपस्वी, ज्ञानी, शान्त स्वभावी, और गम्भीराकृति मुनि श्री नन्दलालजी म० का स्वर्गवास सम्वत् १९६३ में ८१ वर्ष की अवस्था में हुआ ॥३८९ ९०॥

स्वामिन् ! त्वच्चरणे पतन्ति विमलात्मानोजनाः नेऽचलम्,
यैते स्युर्भुवि भूरिमूर्द्धमणयश्चित्र समानोदयाः ।
धृत्वा ख्यातिमिमां तवेश ! विशदां गाम्भ्यादिलब्धर्द्धयः
के केन भ्रमरी भवन्ति चरणाम्भोजे मदास्वादिनि ॥३९१॥
धीरा त्वद्वचनामृतं जनगणाः सुस्थः समाप्युद्भवो,
देवानां निकरस्तु तत्समसुधा तृप्तस्तथा चाभवत् ।
त्वं त्वं यैर्भुवनोपकारकरणे नैवासितृप्तस्तथा,
त्वामेव विबुधाः स्तुवन्ति गुणिषु प्राप्तं करेख समम्॥३९२॥
श्लाघा ते मुनिराज ! कस्य वदने जिह्वेव नो विद्यते,
विद्या सापि न क्वास्ति देव तव या जिह्वातमासेदुषी ।
सन्ति त्वग्यनघाः पवित्रितदिशः सम्यग्गुणाश्चापरे,
मत्वेतीव समस्तजैनजनता त्वां स्वामिनं मन्यते ॥३९३॥

भावार्थ— आचार्य श्री के इस शिक्षाप्रद वक्तव्य को श्रवण

करके सर्व मुनि मिलकर आपकी स्तुति करने लगे, कि हे स्वामिन्! आपके चरण कमल की भक्ति से जन्म मरण से रहित अविचल पद की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि अच्छे-अच्छे योग्य पुरुष भी आपके चरणों की सेवा मे लीन रहते हैं। और स्तुति करते हैं, कि हे स्वामिन्! आपके उपदेशामृत से सतुष्ट होकर प्राणी जन्म-मृत्यु के फन्दों से विमुक्त हो दिव्य पद को प्राप्त करके सतुष्ट हो जाते हैं। किन्तु हे महा परोपकारक महात्मा! आप निरन्तर परायों का उपकार करते हुए भी सतुष्ट नहीं होते हैं। अर्थात् उपकार पर उपकार करते हुए भी आपकी परोपकार वृत्ति अधिकाधिक वृद्धि को प्राप्त होती जा रही है। हे मुनीश! आपकी प्रशसा ने किसके मुख मे जिह्वा की तरह विराजमान् होकर वास नहीं किया अर्थात् सभी के मुह से आपकी प्रशसा हो रही है। संसार मे आपके सदुपदेश द्वारा पापाचारी लोग भी सुपथ-गामी हो गये हैं इसीलिए आप वास्तविक आचार्य हैं। ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

विविधवादिमतङ्गजकेशरिन्।
कपटपञ्जर भङ्गकृते करिन्॥
भवपयोधि समुत्तरेण तरिन्।
प्रबलधैर्यहरेर्वसने दरिन्॥३६४॥
अयि गुरो! तव पादसरोजकम्,
विमलकल्पितकल्पतरुपमम्।

दद्तु नः सुकृत भुवि निर्ममा,
शरमामरमामरमानिता ॥३६५॥

भावार्थ—विभिन्न वाद-विवाद स्वरूपी उन्मत्त हाथियों के के लिए सिंह के समान, कपट रूपी जाल के भञ्जन के लिए हस्तीस्वरूप, ससार समुद्र से पार करने के लिए जहाज के समान धैर्यरूपी सिंह के निवास के लिए गुफा तुल्य हे गुरु महाराज! आपके चरण कमल, मुक्तिरूपी फल की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं। आपके उन्हीं अमल कोमल चरणारविंदों की भक्ति के द्वारा ससार के भव भय ग्रसित अक्षय निरामय सुख प्राप्त हो ॥३६४ ३६५॥

श्रुत्वेद स्तवन प्रसन्नमनसाऽथ खूबचन्द्रस्ततः
आशीर्वाददतेः भवन्तु सुखिनः सर्वे जगत्प्राणिनः।
कामक्रोधमहामदादिरिपवो यान्तु क्षयसर्वतः,
सर्व सन्तु निरामया नयवृता धर्मश्रिया शोभिताः ॥३६६॥

भावार्थ—मुनियों द्वारा की गई इस स्तुति को श्रवण करके हमारे चरित्रनायक आचार्य श्री खूबचन्द्र जी म० ने प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद प्रदान किया, कि जगत् के समस्त प्राणी निरोग धर्मनिष्ठ और शोभायमान् हों। तथा कामादिक षड् रिपुओं का संहार करते हुए अखण्ड सुख और यश को प्राप्त हों ॥ ३६६ ॥

श्रीचम्पकः क्षत्रियवन्धुरेको जग्राह जैनं व्यसनानि हित्वा।

पर्जन्यकाले विगते जनाना, दिल्यागराप्रभृतिसघकानाम् ॥
संप्रार्थनायोजितसज्जनानां, सप्रार्थनाः प्रार्थनयोजिताय।
समागतास्तत्र मुनीश्वराय, धर्मस्य तत्वार्थप्ररूपकाय॥३६८
खण्डेलवास्तव्य जनास्तु तेषामनेकवारं विनयं विदध्युः।
समेत्य पार्श्वे मुनितल्लजस्य धर्मस्य तत्वार्थ पिपासितास्ते॥

भावार्थ—इस सवत् १६६३ के चातुर्मास मे हमारे चरित्र-नायक जी के सदुपदेश से एक चम्पक सेन नामक क्षत्रिय भाई ने दुर्व्यसनो को त्याग कर जैन धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार चरित्रनायक जी के प्रभाव से गत १८ १६ साल मे जितनी तपस्या नहीं हुई थी उतनी तपस्या इस चातुर्मास मे हुई। बहुतसे उपवास तथा ३१ तेले, २८ चोले, २० पचोले, १८ अट्ठाइया आदि के अतिरिक्त धर्म-ध्यान सवर और पौषध व्रतादि हुए। चातुर्मास की पूर्ति के समय आपकी सेवा मे देहली, आगरा, अलवर, टोंक, अजमेर, किशनगढ, और खण्डेला आदि कई गावों के श्री सघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्र मे चातुर्मास की विनतियाँ तार और चिट्ठियों द्वारा आई। तथा खण्डेला के भाइयों ने तो चार-पाच वार चरित्रनायक जी की सेवा मे आकर अपने क्षेत्र को पावन करने के लिए बहुत ही आग्रह किया॥ ३६७॥ ३६८॥ ३६६॥

श्रीनारनोलात्पटियालसस्थान्,
पत्राण्यदात् श्रीमुनियोऽमरेन्द्रः।



'आदर्श चरितम्' के हिन्दी-संशोधक एवं प्रूफ रीडर
धर्म प्रेमी उत्साही युवक श्री दीपचन्द जी सुराना
गंगधार (झाला वाड़)

वहुागहैः श्रीपृथ्वीचन्द्रमहिमाओर
आचार्यपदोत्सवस्य श्याय ॥४०१॥
सुरेशपर्याः विदुषी सुचन्दा,
देवी सती मान्यलिखत्पलाशम्।
रुग्णा मती साधनदेह जम्मु
वात्सल्यकाद्दर्ष्टुमना भवन्तम् ॥४०२॥
सर्वांश्च भावान् मनसि प्रचिन्त्य
खण्डेलतः नारनल प्रबोध्य।
सिषेध दिल्ली शुभमार्गशीर्ष
मासस्य कृष्णा प्रतिपत्तिथौ मः ॥४०३॥

भावार्थ— इसी प्रकार मुकाम नारनौल (पटियाला) और महेन्द्रगढ़ से पंडित मुनि श्री अमरचन्द जी और मुनि श्री श्यामलाल जी म० की ओर से वारम्बार आग्रह भरी चिट्ठियां आपकी सेवा में इस आशय की आती थीं, कि माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन प० मुनि श्री पृथ्वीचन्द जी म० को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाने का शुभ मुहूर्त है। अत इस शुभ प्रसंग पर आपको अवश्य ही पधारने की कृपा करनी चाहिये देहली में विराजित विदुषी श्रीमती सती जी श्री चन्दादेवी जी महाराज की ओर से भी जयपुर चातुर्मास में अनेकों वार समाचार आ चुके थे, कि पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज के दर्शनों की चिरकाल से अत्यन्त

अभिलाषा लगरही है। सती जी श्री धनदेवी जी (जम्मूवाली) अस्वस्थ है। वे आपके दर्शनों के लिए बहुत ही लालायित हो होरही है। अतएव शीघ्र ही पधार कर दर्शन देने की कृपा करें"। इन सभी समाचारों को लक्ष मे रख कर आचार्य श्री जी ने खण्डेला की भूमि को स्पर्श करके नारनौल होते हुए देहली पधारना ही आवश्यकीय और उचित समझा। और तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को आपने जयपुर से विहार कर दिया॥४०१-४०२-४०३॥

विहारकाले मुनिपस्य पुर्याः, विद्यालयीयाः वसनैः सुनद्धाः।
जयैर्वचोभिःशुभरम्यवाचः,विद्यार्थिनस्तत्रपुरप्रचेलुः॥४०४
प्रतिष्ठिताः सज्जनश्रेष्ठिवर्गाः, शिरासिपादौमुनिराजकीयौ।
सम्प्रश्रयंप्राध्वनिसंनमनाः, शोभाविशेषावरितप्रचक्रुः।४०५
जैनेतराः जैनजनाश्च नार्यः, केचिन्नमन्तः मुनिपं तदा‿मू।
केचिच्चसद्मानिगताःमनुष्याः,संदर्शनैःस्वंसफलंविदध्युः ४०६
उपवनमधिशिश्ये श्रेष्ठिचम्पेन्दु पत्नी,
विनययुतशुभैः सः आग्रहै माधुराजः।
शरगतदश संख्या तत्र वासं दिनाना,
मथगमनमकार्षीत् भक्तिपूर्णां खण्डेलाम्॥ ४०७॥

भावार्थ—विहार का दृश्य बड़ा ही अजीब और विलक्षण था श्री जैन सुबोध स्कूल के विद्यार्थी गण एक ही युनीफार्म (ड्रेस) से सुसज्जित हो कर गगन भेदी जय घोष करते हुए आगे-आगे चल

रहे थे। जयपुर सघ के अतिरिक्त नगर के बहुतसे गण्य मान्य नागरिक भी इस जुलूस मे सम्मिलित थे। महिलाएँ भी मगलगान द्वारा जुलूस की शोभा को बढा रही थी। जुलूस जब ठीक जौहरी बाजार मे आया तो वहा सैंकडों नर-नारियों के झुड के झुड आ आ कर आचार्य श्री को यथा विधि वदना करते थे। बाजार मे सडक के दोनों तर्फ दर्शकों की कतार सी लग गई थी। यह जुलूस जौहरी चम्पालाल जी वैद की बगीची पर जाकर समाप्त हुआ। जौहरी जी के अतीव आग्रह से पूज्य श्री ने लगभग १५ १६ दिन तक शहर के बाहर उनकी वाटिका मे निवास किया। और फिर वहा से खण्डेला की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे श्री पुगलिया ने अपनी स्टेशन वाली धर्मशाला मे ठहरने की विनती की। अत चरित्रनायक जी ने दो दिन ठहर कर वहा भी व्याख्यान फरमाये। फिर स्टेशन से विहार कर ३ माइल दूर जटवाड़ा मे पधारे। श्रीमान सेठ चम्पालाल जी जौहरी ने जटवाडे मे आए हुए दर्शनार्थियों का भोजनादि के द्वारा उचित स्वागत सत्कार किया था। उधर खण्डेला के ८ १० सज्जन गुरु भक्ति से खिंचे हुए लगभग ४० माइल सामने आचार्य श्री की पेशवाई मे आ गये थे जाडे का मौसम था। और रास्ता बालु रेत का था। इस से जैन साधुओं का आवागमन बहुत ही कम होता था तथापि हमारे वयोवृद्ध आचार्य श्री जी ने जन-कल्याण की दृष्टि से उस कठिन रास्ते से पधारना ही उचित समझा मार्ग के छोटे बडे सभी ग्रामों मे अनेक अज्ञानी जैनेतरों को आपने अपने प्रतिबोध द्वारा सत्पथ

के पथिक बनाए। रास्ते में आहार पानी मकान आदि के अनेक परिषहों को सहन करते हुए आप खण्डेला पधारे ॥ ४०४-४०५ ४०६ ४०७ ॥

गव्यूतिपंक्ति प्रययुर्मुनीशम्, खंडेलनास्तव्यजनाः भरन्तम् ।
यत्रेतिनोमाधुजनः प्रकृष्टात्, तत्रैनसंसेकनपूर्णमार्गे ॥४०८॥
ग्रामाद्धपु सा प्रतिबोधनाय, जलादिपोटां परिपीडमानः ।
शीततु कालेजरठोऽपि धर्मप्रचारणाय समुद्यतः ये ॥४०९॥
खण्डेलपुर्यं भरतः सरण्या, व्याख्यानतुर्यं प्रबभूव चेकम्
विद्यालयेऽत्र जनैःपूर्णपञ्चागतानानरवृन्दकानाम् ॥४१०॥
भूमा तपस्यापि बभूव नृणाम्, मुनेः प्रभावात्कृतकर्मदारी।
ततो विहार पुरिनारनोले, चकारधर्मेन्दुतमोभि हन्ता ॥४११॥
गव्यूति पञ्चं कविजिन्मुरेन्द्र, मुनीशक श्रापमुनिद्वयेन ।
जयादिशब्देर्नगरे प्रवेशो, बभूवसूबेन्दुमुनीश्वरस्य ॥४१२॥
दुलीन्दु हर्म्ये वसन चकार, शुभाग्रहैः श्रेष्टिदुलीन्दुकैः स;
देशामृते धार्मिकमधक तम्, सिञ्चन्मुनीशोऽत्र सुशान्तचेताः।
श्रीपृथ्वीचन्द्रस्य मुनीश्वरस्य, आचार्य पट्टोत्सवके तदैव ।
श्रीफूलचन्द्रोमदनोमुनिश्च, समागतौ माघसिते जयायाम् ॥

भावार्थ—खण्डेला में आपके चार पांच सार्वजनिक व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान सरकारी स्कूल में हुआ। जन सख्या

लगभग चार सा पांच सौ हो जाती थी। यहां त्याग प्रत्याख्यान तथा तपश्चर्या अच्छी हुई। खण्डेला से विहार कर आप नारनोल की तरफ पधारे। तब आपके स्वागतार्थ नारनोल से लगभग दस-बारह कोस की दूरी पर पण्डितवर्य पं० मुनि श्री अमरचन्दजी म० और श्री श्रीचन्दजी म० आपके सामने पधारे थे। जिस दिन आपका शुभागमन नारनोल में हुआ, उस दिन भी आपके स्वागत के लिए चतुर्विध श्री संघ आपके सामने पेशवाई में पहुँचा था। तथा पं० मुनि श्री तुलसीचन्द्रजी म० (जो अभी आचार्य हैं) और श्री श्यामलालजी महाराज आदि मुनिराजों ने भी प्रसन्नता पूर्वक आपके सामने पधारने का कष्ट उठाया था। गगन भेदी जय-घोष के साथ आपका पदार्पण शहर में करवाया गया। श्री सेठ दुलीचन्दजी वैश्य की हवेली में आप विराजमान हुए। आचार्य पदोत्सव का शुभ मुहूर्त माघ शुक्ला १३ का था। उस शुभ अवसर पर मुनि श्री मन्नलालजी म० और मुनि श्री फूलचन्दजी महाराज (पंजाबी) ने भी पधारने की कृपा की थी ॥४०८ ४१४॥



पत्रैर्मनोज्ञैर्मनसोहराणा, सुसम्प्रदायैर्भवता मुनीनाम् ।
यत्स्वागतप्राजनिदेनवाएयः।हिन्त्यास्तथाधश्च विलोकनीयम्॥

पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज के, आचार्य पद
महोत्सव के, अवसर पर पधारने के उपलक्ष
में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य तत्त्ववारिधि त्याग-
मूर्ति पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज
साहब की पवित्र सेवा में
सादर समर्पित किया
हुआ

"अभिनन्दन-पत्र"

—:—

सौम्याकृतिः परम-पुण्य-पवित्र-गात्रः ।
दुष्कर्म रूप-विष वृक्ष- सुतीक्ष्ण-दात्रः ॥
गम्भीरता-सरलतादि गुणैक-पात्रः ।
पूज्य श्चिर-विजयया-मुनि-खूबचन्द्रः ॥१॥

भावार्थ—सुन्दर आकृति, पुण्य से पुनीत शरीर, पाप वृक्ष के काटने के लिये दात्ररूप गम्भीर्य, सरलता, आदि गुणों के पात्र पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥१॥

सत्यार्थ-बोधक-सुबोध-मरीचि-धर्ता।
दुर्वादिनां-कुटिल-बुद्ध्यभिमान हर्ता॥
भव्यात्मना-तनुमतेश्च-विकाश-कर्त्ता।
पूज्यश्चिर-विजयता मुनि-खूबचन्द्रः ॥२॥

भावार्थ—सत्य अर्थ की बोधक, सुन्दर किरणों को धारण करने वाले, कुतर्कियों की बुद्धि के अभिमान को चूर करने वाले, शुद्धात्माओं की स्वच्छ बुद्धि का विकाश करने वाले पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥२॥

शान्ता जव-जव-समुत्थ दुरन्त-तापः।
संशुद्ध-भक्तिकृत-सन्मतिनाथ-जापः॥
मार्तण्ड-तुल्य-परिदीप्त-तपः-प्रतापः।
पूज्यश्चिर-विजयता-मुनि खूबचन्द्रः ॥३॥

भावार्थ—संसार में उठे हुए दुरन्त सन्ताप को नष्ट करने वाले, शुद्ध भक्ति द्वारा भगवान् महावीर का जाप करने वाले, सूर्य के समान दीप्त प्रताप वाले, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥३॥

नाना सुरष्टि-जन वंदित-पाद कञ्ज।
शान्ते विहार-रमणीय-लता निकुंजः॥

ध्यानाग्नि-दग्ध-परिवर्द्धित-पाप पुंजः ।
पूज्यश्चिर-निजयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥४॥

भावार्थ—अनेक राष्ट्रों मे मनुष्यों से पाद-पूजित, शान्ति के हार के लिये, सुन्दरलता मण्डप, बढे हुए पाप समूह को ध्यान अग्नि से जलाने वाले, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय ॥४॥

दूरीकृताखिल-ममत्व-तमो-वितानः ।
कदर्प दर्प दलने सफला-भियानः ॥
क्षान्त्या-विनिर्जित-कदाग्रह-कोपमानः ।
पूज्यश्चिरं-निजयता-मुनि खूबचन्द्रः ॥५॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ममता के अन्धकार समूह को दूर करने ले, कामदेव के अभिमान को चूर करने मे सफल हैं, आरम्भ ानना क्षमा से, कुत्सित आग्रह, कोप, और अभिमान को जीतने ले पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥५॥

साक्षादखण्ड-शुभ सत्य-दयावतारः ।
शास्त्रावगाहन-परिष्कृत-पद्विचारः ॥
पूर्ग्राम-संघ कृत-जैनमत-प्रचारः ।
पूज्यश्चिरं-निजयता-मुनि खूबचन्द्र ॥६॥

भावार्थ—अखण्ड शुभ, सत्य और दया के अवतार, शा ो

के अनुग्रह से परिष्कृत-विचार युक्त, नगर, ग्राम और सभी में जैनमत के प्रचारक, पूज्य श्री मुनि रूपचन्द्रजी की विजय हो ॥६॥

उपसंहार

व्याख्याने सुमनोहरे प्रतिदिनं श्रद्धान्वितानमोदयन् ।
नाना-जन्म-विवृद्ध कर्म-लतिका, मूल-समून्मूलयन् ॥ श्रेष्ठे-
मोक्ष पथे सुयुक्ति शतकैर्भव्याञ्जनान्स्थापयन् । पूज्या-
चार्य वर सदैव जयतात्, सुप्तं जगद् बोधयन् ॥७॥

भावार्थ—सुमधुर व्याख्यानों द्वारा श्रद्धा युक्त मनुष्यों का आनन्द बढ़ाते हुए, अनेक जन्मों के बांधे हुए कर्म रूपी बेल की मूल को उखाड़ते हुए, सैकड़ों युक्तियों द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों को सुन्दर मोक्ष मार्ग में ले जाते हुए, सोये हुये जगत को जगाते हुये आचार्यवर सदैव विजय प्राप्त करें ॥७॥

माघ कृष्णा १२ सोमवार
ता० ८ फरवरी १९३७ ई०

समर्पयित—
पूज्य श्री मनोहर दासीय
सकल श्रमण संघ।

से अवगाहन से परिपूर्ण-विचार युक्त, राग, मान और मदों में जैनमत के प्रचारक, ऐसे श्री मुनि मनोहरदास जी की विजय हो ॥८॥

उपसंहार

व्याख्यानैं मृमनोहरैः परिषदः श्रद्धान्वितानमोदयन् । नाना-जन्म-निबद्ध कर्म-कलिना, मूल-समून्मूलयन् ॥ श्रेष्ठे-मोक्ष पथे सुयुक्ति शतकैः,र्भव्यान्जनानुस्थापयन् । पूज्या-चार्य वर सदैव जयतात्, सुप्तं जगद् बोधयन् ॥७॥

भावार्थ—सुमधुर व्याख्यानों द्वारा श्रद्धा युक्त मनुष्यों का आनन्द बढ़ाते हुए, अनेक जन्मों के कारण बढ़े हुए कर्म वृक्षों की मूल को उखाड़ते हुए, सैकड़ों युक्तियों द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों को सुन्दर मोक्ष मार्ग में ले जाते हुए, सोये हुये जगत को जगाते हुये आचार्यवर सदैव विजय प्राप्त करें ॥७॥

माघ कृष्णा १२ सोमवार
ता० ८ फरवरी १९३७ ई०

समर्पित—
पूज्य श्री मनोहर दासीय
सकल श्रमण संघ।

❋ स्वागत ❋

करने स्वागत आपका श्री पूज्य मुनि जन आये हैं।
कर कृपा स्वीकारये सेवा निवेदन लाये हैं ॥
काल-कानन मे तृषित भटके फिरे जो आज लौं।
प्राप्त कर आनन्द घन आनन्द-जल झलकाये हैं ॥
हे पतित पावन करो पद-रज से पावन ये धरा।
पन्यजन्त्र से पाप के जन आपके घबराये हैं ॥
ज्ञान रवि से नाश निशितम कर किये कोटिक अभय।
ये विरद सुन आपका धन धैर्य धर धराये हैं ॥
शास्त्र निधि तव पद कमल पर मन भ्रमर गु जा रहे।
रंक जिमि धन राशि अरु अहि लह मणि सुरा पाये हैं ॥
होगया विश्राम आश्वासन मिला भय मिट गया।
वर्ण धारी करने जब सागर मथैया आये हैं ॥
कर मदन मद भग रिस मोह लोभ जारि तपाग्नि से।
शान्ति सागर वीतरागी द्वेष दुर्ग ढहाये हैं ॥
'परोपकार सता विभूतय" रम रहा प्रत्यग मे।
हिंसकों के मन अहिंसा धर्म से दहलाये हैं ॥
प्राप्त हो निर्वाण पद इन्द्रिय अजित बल चूर हों।
अति सुगम अति श्रुति प्रिय उपदेश नित्य सुनाये हैं ॥

चल किया प्रस्थान पापाचार ने जिस ओर को।
आपने पग धार-पुन्योद्यान मुनि लहराये हैं॥
धन्य बडभागी किया जन को कृपा की दृष्टि से।
होगये कृत कृत्य दर्शन कर हृदय हर्षाये हैं॥
गिन रहे थे उगलियों पर वार तिथियां रैन दिन।
आपके प्रिय भक्त गद्गद कंठ हो हुलसाये हैं॥
किस तरह स्वागत करें उलझन कठिन है पूज्य श्री।
केवल इतना ज्ञान है श्री ज्ञान शशि उदयाये हैं॥
हृदय वेदि पर विराजें नाथ है ये कामना।
पूज्य मुनि श्री खूबचन्दर "मैह" जन मन आये हैं॥
(बनवारी लाल 'मैह" मंत्री श्री जैन संघ नारनौल)

पृथ्वीन्दुराचार्यपदे बभूव, गणिपदं श्यामशशी प्रपेदे।
जना उपाध्यायपदेऽमरेन्दुम्, नियुक्तवन्तो बहुसख्यकास्ते॥
निहृत्य रेवाडिपुरीं सिपेधघे, श्री मुशिरामीय गृहे च तस्थौ।
स्वसम्प्रदायीयगृहस्थयुग्मं, तथापि लोका बहवः सभायाः॥
समागताःश्रीभवतः प्ररम्या, व्याख्यानशैलीपरितः शुभाताम्
सत्रीत्यशान्ति शुभदाश्च तत्र,दैगम्बरा वैष्णवबन्धवोऽपि॥
पञ्चद्वय तत्र दिनानि नीत्वा, जनोपकारं विदधन्मुनीशः।
मार्गस्थानेकान्मनुजान्पुनान, चैत्रे रटैन्द्रं नगरं जगाहे॥
भावार्थ—निश्चित तिथि पर पद-प्रदान का कार्यक्रम सा.

नन्द सम्पन्न हुआ। श्री पृथ्वीचन्द्र जी म० को आचार्य-पद मुनिश्री श्यामलाल जी म० को गणावच्छेदक पद, और मुनि श्री अमरचंद जी म० को उपाध्याय का पद समारोह पूर्वक प्रदान किया गया। इसी शुभ प्रसग पर दो दीक्षार्थियों की दीक्षा भी हुई। इन महोत्सवों में बाहर से सैकडों स्त्री पुरुषों ने आकर भाग लिया था आप नारनौल से रेवाडी पधारे। वहा श्री० लाला मुन्शीराम जैन रईस के नवीन मकान में निवास किया। वहा स्थानक वासियों के केवल एक-दो घर होते हुए भी आचार्य श्री के व्याख्यान में लगभग ३५ ४० स्त्री पुरुषों की उपस्थिति होती थी। आपकी शान्त मुद्रा को देख देख कर दिगम्बर भाई भी आपकी बडी ही प्रशंसा करते थे। आप वहा पर दस रात्रि विराजे। वहा से विहार करके आप कई छोटे-बडे स्थानों में जिन-वाणी का प्रचार करते हुए चैत्र मास में शहर देहली में पधारे ॥ ४९५—४९८॥

सुस्वागतं पूर्णमनोज्ञशोभ, जनाःप्रचक्रुर्मुनिपस्य दिल्ल्याम्।
अत्याग्रहं चापि विदध्युर्लोकाः, अखण्डभूखण्डमहोभगस्य॥
पर्जन्यकालस्य निवासनाय, भक्ति शुभा धर्ममति जनानाम्
दृष्ट्वातदार्थाङ्कनिधीन्दुजातं, पर्जन्यकाले मुनिरत्र तस्थौ॥
तुर्याङ्काङ्कमहीमिते मुनिगणे छन्नेन्दुजिन्नामकः
चत्वारिंशत्पञ्चसंख्यकमितं तप्तोदका वारतः॥
तेपे तत्र तपस्तदापरस्थनः संपारणाया पुनः।

लोकाः दानमगस्तदात्मभरन्शो मोत्सयैभाविताः ॥

भावार्थ—देहली के श्री सघ ने आपका शानदार स्वागत किया। और चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह किया। अतः सवत् १६६४ का चातुर्मास आपने शहर देहली मे किया ॥ ४१८ ॥ ४१६ ॥

इसी वर्ष आपकी सेवा मे निवास करने वाले तपोनिष्ठ मुनि श्री छन्नालाल जी महाराज ने केवल गर्म जल के आधार से ४५ दिन की तपश्चर्या की। तपस्या की पूर्ति पर बाहर गावों से सैकड़ो दर्शनार्थियों ने आकर तपोत्सव की शोभा मे अभिवृद्धि की थी। उस दिन दया, दान, परोपकारादि बहुत से धार्मिक कृत्य हुए। बारह दरी के नीचे दूध की प्याऊएँ खोली गई थी। श्री सघ ने तपोत्सव बडे उत्साह पूर्वक मनाया था।

पञ्चाङ्क भूखण्डमहीमिताब्दे, सॅघाग्रहैरत्र चतुर्थमल्ल ।
खूबेन्दुजिच्चापि मुनीशवर्यः पर्जन्यकालं महसा निनाय ॥
प्रसिद्धवक्ता मुनिचौथमल्लः श्रीखूबचन्द्रो मुनिसत्तमश्च ।
एकत्र कालॅ जलदीयकाले, चकार सोऽयं प्रथमोऽस्तिकल्पः ॥

भावार्थ—अगला चातुर्मास अर्थात् सम्वत् १६६५ का चातुर्मास भी आपने देहली मे ही किया। इस वर्ष हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज और जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमल जी महाराज इन दोनों महापुरुषों का सम्मिलित

चातुर्मास चादनी चौक वाले श्री महावीर जैन-भवन की विशाल बिल्डिंग मे हुआ।

चतुर्थमल्ला श्रयनेमिचन्द्रः दिनानि तुर्याश्वनितानि तेपे।
तोयस्य तप्तस्य शुभा श्रयेण, पूर्वाणि कर्माणि विचूर्णयिष्यन्॥
श्रीछव्वचन्द्रस्यमुनिश्छवेन्दुः तुर्याग्निसंख्याप्रमितं दिनानाम्।
पर्यूपणे कर्म निवर्हकाणि, तपांसि तेपे जलमात्र सेवी॥
दुग्धस्य लोकाःशुभपारणान्ते, चक्रुः सुदान जिन भक्तिलीनाः।
निर्ग्रन्थसप्ताहपर सुज्ञान, दानं ददौ तत्र चतुर्थमल्लः॥

भावार्थ—इस वर्ष के चातुर्मास मे धर्म-ध्यान और तपश्चर्या अच्छी हुई। निर्ग्रंथ प्रवचन-सप्ताह सानन्द मनाया गया। तपस्वी श्री छब्बालाल जी म० तथा तपस्वी श्री नेमिचन्द जी म० ने केवल गर्म जल के आधार से क्रमश ३४ और ४७ दिन की तपश्चर्या की तप व्रतों की पूर्ति पर सब की ओर से बारह दरी के नीचे दूध की प्याऊएँ दीगई थी। और उस दिन बहुत-सा उपकार हुआ। बाहर गावों से दर्शनार्थियो ने उपस्थित होकर दर्शन और चरण स्पर्श का लाभ लिया था। चरित्रनायक जी की शान्तवृत्ति, वैराग्य, और नम्रता आदि सद् गुणों को समाज भली प्रकार जानती है। आप को अधिकाश तात्विक ज्ञान की बातें और सूत्र-रहस्य कण्ठस्थ याद है।

निर्ग्रन्थसम्राहमनेकलोकाः पुरीश्च ग्रामान् प्रविहाय याताः
श्रीशक्रपुर्याः शुभसघ कस्तानातिथ्य सत्कारतया प्रपेदे ।
प्रभावना धर्मसुलीन भावा तत्रस्त्य जनता हर्षे प्रमग्ना ॥
गार्हस्थ्यकार्यं प्रविहाय सद्यः धर्मस्य संराधानतत्परा भूम् ॥

उदयपुर नरेशः पूज्य श्री खूबचन्द्रात्
प्रथितसुखदशान्तिः शास्त्रतत्त्वस्य
जनमतशुभतत्वं चौथमल्लात्तथैव,
जिनमत्शुभसूर्यात् ख्यातवक्तुः पृथिव्याम् ।
निगदितमनुकर्ण्या भूरि भूरि प्रशंसाम,
विदधदन्तु शुभ स्वं तत्वसंलीन भावा ।
गदतु गदतु धर्म्मं मे हितं भावयन्तौ,
पुनरपि शुभवार्णी स्वच्छचेताः वितेने ॥

भावार्थ—इसी वर्ष अर्थात १६६५ के कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी रविवार तदनुसार ता० ६ ११-३८ को देहली में उदयपुर नरेश श्रीमान् ने हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज एव जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता प० मुनि श्री चौथमल जी महाराज का व्याख्यान लगभग एक घन्टे तक श्रवण करके बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ।

चातुर्मास चाँदनी चौक वाले श्री महावीर जैन-भवन की विशाल बिल्डिंग में हुआ।

चतुर्थमल्ला श्रयनेमिचन्द्रः दिनानि तुर्याश्वनितानि तेपे।
तोयस्य तप्तस्य शुभा श्रयेण, पूर्वाणि कर्माणि विचूर्णयिष्यन्॥
श्रीखूबचन्द्रस्यमुनिश्छवेन्दुः तुर्याब्धिमख्याप्रमितं दिनानाम्।
पर्यूषणे कर्म निबर्हकाणि, तपांसि तेपे जलमात्र सेवी॥
दुग्धस्य लोकाःशुभपारणान्ते, चक्रुः सुदानं जिन भक्तिलीनाः।
निर्ग्रन्थसप्ताहपर सुज्ञान, दानं ददौ तत्र चतुर्थमल्लः॥

भावार्थ—इस वर्ष के चातुर्मास में धर्म-ध्यान और तपश्चर्या अच्छी हुई। निर्ग्रंथ प्रवचन-सप्ताह सानन्द मनाया गया। तपस्वी श्री छन्नालाल जी म० तथा तपस्वी श्री नेमिचन्द जी म० ने केवल गर्म जल के आधार से क्रमशः ३४ और ४७ दिन की तपश्चर्या की तप व्रतों की पूर्ति पर सब की ओर से बारह दरी के नीचे दूध की प्याऊएँ दीगई थी। और उस दिन बहुत-सा उपकार हुआ। बाहर गावों से दर्शनार्थियों ने उपस्थित होकर दर्शन और चरण-स्पर्श का लाभ लिया था। चरित्रनायक जी की शान्तवृत्ति, वैराग्य, और नम्रता आदि सद् गुणों को समाज भली प्रकार जानती है। आप को अधिकाश तात्विक ज्ञान की बातें और सूत्र-रहस्य कण्ठस्थ याद है।

निर्ग्रन्थगणाढ्यमनेकलोकाः पुरीश्च ग्रामान् प्रविहाय याताः
श्रीशक्रपुर्याः शुभमथ कस्तानातिथ्य सत्कारतया प्रपेदे ।
प्रभावना धर्मसुलीन भावा तत्रस्त्य जनता हर्षे प्रमग्ना ॥
गार्हस्थ्यकार्यं प्रविहाय मद्यः धर्मस्य संराधानतत्परा भूम् ॥

उदयपुर नरेशः पूज्य श्री खूबचन्द्रात्
प्रथितमुखदशान्तिः शास्त्रतत्त्वस्य · · ·
जनमतशुभतत्त्वं चौथमल्लात्तथैव,
जिनमतशुभसूर्यात् ख्यातवक्तुः पृथिव्याम् ।
निगदितमनुकर्ण्यां भूरि भूरि प्रशंसाम,
विदधदन्तु शुभ स्ते तत्त्वसँलीन भावा ।
गदतु गदतु धर्मं मे हितं भावयन्तौ,
पुनरपि शुभवाणीं स्वच्छचेताः वितेने ॥

भावार्थ—इसी वर्ष अर्थात् १९९५ के कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी रविवार तदनुसार ता० ६ ११ ३८ को देहली में उदयपुर नरेश श्रीमान् ने हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज एवं जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता प० मुनि श्री चौथमल जी महाराज का व्याख्यान लगभग एक घण्टे तक श्रवण करके बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ।

सप्तम परिच्छेद

आचार्य-क्रमावली

पूज्य श्रीहुक्मेन्दुजिन्मुनिरभूत्तश्च शिवेन्दुर्वभौ,
पूज्य श्रीरुदयाब्धिजिच्चनवृते श्रीचौथमल्लः पुनः ।
श्री श्रीलालमुनिश्चपूज्यपदवीं मन्नेन्दुाऽमादधौ,
खूबेन्दुश्चविराजते शुभपदे भावी छगनल्ल लजित् ॥

(१) पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज ।
(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज ।
(३) पूज्य श्री उदयसागर, जी महाराज ।
(४) पूज्य श्री चौथमल जी महाराज ।

(५) पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज-(५) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज
(६) पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज
(७) युवाचार्य श्री छगनलाल जी म०

संक्षिप्त-परिचय

टूंढार स्थितटोंडग्रामवसनो जात्यौसवालमहान्,
पूज्यश्रीचपलोतगोत्र तिलको हुक्मेन्दुजिन्नामकः ।
नन्दर्षिद्विप भूमिते शुभतमे श्रीमार्गशीर्षे वरे,
श्रीलालेन्दुमुनीशतः शुभपरो जग्राह दीक्षामयम् ॥

धृत्वा वै सलिलादिक निदशक शेषाणि वस्तूनि क्री,
त्यक्त्वैकाधिकविंशहायनमितं वेला पर पारणम् ।
यंचकेस्तुतिपाठलीन हृदयः शिष्यस्य त्यागि भवन,
स्वर्गारोहणक तवान मुनिभू नन्दैकवर्षे मिते ॥

(१) पूज्य श्रीहुक्मीचन्द जी महाराज—आप ढूंढार देशान्तर्गत 'टोड़ा' नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म ओसवाल वंश के चपलोत गोत्र में हुआ था। आपने संवत् १८८६ के मार्गशीर्ष मास में, अपने पूज्य गुरुवर्य श्री मुनि श्री लालचन्द जी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने इक्कीस वर्ष तक बेले-बेले पारणा की तपश्चर्या की थी आप केवल एक ही चद्दर ओढते थे। आपने अमुक अमुक तेरह वस्तुओं के जैसे पानी एक, रोटी दो या तेरह वस्तुओं का आगार रख कर शेष मिष्टान्न, घृत, दूध और तेल आदि समस्त पदार्थों का परित्याग कर दिया था। सेकी हुई वस्तु जैसे पापड़ और बाटी वगैरा तथा तली हुई वस्तुओं को भी आपने त्याग दिया था। आप नित्यप्रति दो सौ नमुत्थुणं का पाठ करते थे। अर्थात् प्रतिदिन दो सो बार आप सिद्धों की स्तुति करते थे। शिष्य के परित्याग थे। आपका स्वर्गवास सं० १९१७ में जावद में हुआ।

लोढे साजनगोत्रभाक्शिवशशी जात्यौसवालोमुनि
धाम्णोद् जनपान्वशुभदय श्रीमालवान्तर्गत ।

सप्तम परिच्छेद

आचार्य-क्रमावली

पूज्य श्रीहुक्मेन्दुजिन्मुनिरभूत्तस्य। च्छिवेन्दुर्वभौ,
पूज्य श्रीरुदयाब्दिर्जिच्चनवृते श्रीचौथमल्लः पुनः।
श्री श्रीलालमुनिश्चपूज्यपदवीं मन्नेन्दुाऽमादधौ,
खूबेन्दुश्चविराजते शुभपदे भावी छगनल लजित्॥

(१) पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज।
(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज।
(३) पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज।
(४) पूज्य श्री चौथमल जी महाराज।

(५) पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज-(५) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज
(६) पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज
(७) युवाचार्य श्री छगनलाल जी म०

संक्षिप्त-परिचय

टूडार स्थितटोंडग्रामवसनो जात्यौसवालमहान्,
पूज्यश्रीचपलोतगोत्र तिलको हुकमेन्दुजिन्नामकः।
नन्दर्षिद्विप भूमिते शुभतमे श्रीमार्गशीर्षे वरे,
श्रीलालेन्दुमुनीशतः शुभपरो जग्राह दीक्षामयम्॥

भूनन्दद्विप भूमिवत्सरमिते श्रीमार्गशीर्षाशिते,
षष्ठ्या रत्नललामके गुरुदिने श्रीमद्गजानन्दतः ॥
संदीक्षिण्ययकं चकार नगर श्रीश्रेष्टिभोजा स्वयं,
त्रिंशत्पञ्चगतं तताप सुवपः एकान्तर कर्मघम्,
शिष्यत्यागपरोऽभूव मुनिराडाचार्यपट्टं गतः,
तुर्याक्षिग्रहभूमिते दिविपद भेजे पुरे जावदे ॥

(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज—आप मालव देश के अन्तर्गत 'धामणिया' नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म छोटे साजन ओसवाल जाति में हुआ था। आपने संवत् १८६१ के मार्गशीर्ष शुक्ला ६ गुरुवार के दिन मालवा के सुप्रसिद्ध नगर रतलाम में पूज्य श्री कोटा सम्प्रदाय के लालचन्दजी म० के सु-शिष्य मुनि श्री गजानन्दजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आपके दीक्षा-महोत्सव के व्यय का समस्त भार रतलाम के नगर सेठ श्री भोजा जी भगवानजी ने वहन किया था। आपने ३५ वर्ष तक एकान्तरतप किया। आचार्य-पद पर आरूढ होते ही आपने अपने नवीन शिष्य बनाने का परित्याग कर दिया। आप का स्वर्गवास संवत् १६३४ में जावद में हुआ।

पूज्यश्रीरुदयाब्धिजिनमुनिरभून्खींवेसरागोत्रभाक्,
मारवाड स्थितयोद्धपुरनगरे जात्यौसवालोमहान् ।

सप्ताकाशनयैकसंख्यकमिते हुक्मेन्द्रना दीक्षितः,
भूपं सद्दिशो प्रतापगढप श्रीजावरास्वामिनम् ॥
वस्वब्धिग्रहभूमिते जिवजित सवेगिन पालिगम्,
शास्त्रार्थे परिजित्य कृष्णजलधिं शिष्य तदीय तदा ।
सम्यक्त्वं परिशिक्ष्यदीक्षितमल चक्रे सभाया जयी,
सोऽयं रत्नललामके दिवमयात् तुर्याग्निनन्देन्दुके ॥

(३) पूज्य श्री उदय सागर जी महाराज—आप जोधपुर (मारवाड़) के निवासी थे। आपका जन्म बड़े साथ ओसवाल जाति के सीवेसरा गोत्र में हुआ था। आपने स० १६०७ में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पास दीक्षा स्वीकार की थी। आपने जावरा के नवाब साहब श्री गोस्त मोहम्मद खां जी और प्रताप गढ के नरेश श्रीमान् उदयसिंह जी सा० आदि कई राजा महाराजों को उपदेश प्रदान किया था। संवत् १६७८ में आपने पाली (मारवाड़) में एक सम्वेगी साधु श्री शिवजी रामजी के साथ इस शर्त पर शास्त्रार्थ करना निश्चय किया था कि पराजित होने वाले पक्ष को, अपना एक शिष्य विजयी पक्ष को देना होगा। तदनुसार शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में आपकी विजय हुई। अतः शर्तानुसार सम्वेगी साधुजी ने अपने एक शिष्य श्री किशनसागरजी को सहर्ष आपकी सेवा में समर्पण कर दिया। आपने श्री किशन सागरजी को शुद्ध सम्यक्त्व की शिक्षा देकर जैनेन्द्री दीक्षा से दीक्षित किया। आपका स्वर्गवास स० १६५४ में रतलाम में हुआ।

पूज्यश्रीमुनिचौथमल्लजिदयं मार्वाडपालिस्थिति-
रोस्वालोनवगन्यनन्दकुमिते हुक्मेन्दुना दीक्षितः।
शिष्यत्यागपरोनभूव मतिमानाचार्यपट्टे स्थितः,
मस्राग्न्यङ्कहिमांशुके दिनमयात् रत्ने पुरे योगभाक् ॥

(४) पूज्य श्री चौथमलजी महाराज—आप पाली (मारवाड) के निवासी थे। आपका जन्म वडे साथ ओसवाल वंश में हुआ था। आपने संवत् १९०९ मे पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के समीप दीक्षा ग्रहण की थी। आपको लगभग पाचसौ थोकडे तथा अधिकाश सूत्रों का ज्ञान कण्ठस्थ था। आचार्य होने के पश्चात् आपने शिष्य का परित्याग कर दिया। आपका स्वर्गवास संवत् १९५७ म रतलाम मे हुआ।

श्रीश्रीलालजिदोसवाकुलभूटोकस्य वासी मुनिः
मस्राब्धयङ्कहिमांशुके स्वरमणी त्यक्त्वा विरक्तोऽभवत्।
शिष्यः श्रीमुनिचौथमल्लसुमनेः शिष्यस्य त्यागी नृपान्,
नैकान् सम्प्रतिबोध्य सत्तहय भूखण्डेन्दुकेऽयाद्दिवम्।

(५) (अ) पूज्य श्रीश्रीलालजी महाराज—आप टोंक के निवासी थे। आपका जन्म वडे साथ ओसवाल वंश के बम्ब गोत्र मे हुआ था। आपने संवत् १९४७ मे अपनी स्त्री को छोड़ कर परम वैराग्य भाव से पूज्य श्री चौथमलजी म० के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आप प्रति मास एक-एक तेला किया करते थे। कई राजा-

महाराजाओं को आपने प्रतिबोध दिया। आपने भी शिष्यों का परित्याग कर दिया था। सवत् १६७७ मे जयतारण (मारवाड) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मन्नालालजिदोसवाकुलभूर्नागोरीगोत्रे मणिः,
सदीक्षामुदयाब्धिनामकमुनेर्वस्वग्निनन्देन्दुके।
लात्वा रत्नललामतोसिसुमुनिः प्राधीत्य शास्त्राणि च,
प्राप्याजमेरपुरेसमेलयशः खाङ्काङ्कचन्द्रे खमेत्॥

(५) (न) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज—आप रतलाम (मालवा) के निवासी थे। छोटे साथ ओसवाल वंश के नागौरी गोत्र म आपका जन्म हुआ था। सवत् १९३८ मे पूज्य श्री उदयसागरजी म० के पास आपने दीक्षा अगीकार की थी। आपको शास्त्रों का पर्याप्त ज्ञान था। आपकी प्रकृति बडी कोमल और सरल थी। आपने वृहद् मुनि सम्मेलन के समय, अजमेर मे साम्प्रदायिक वैमनस्य की इति श्री व के अखण्ड यश प्राप्त किया था। आपका स्वर्गवास संवत १९९० मे व्यावर मे हुआ।

श्रीखूबेन्दुजिदोंसवालकुलभूटोकान्तनिम्बाहडा-
वास्तव्यो नयनेन्द्रियाक कुमिते नन्देन्दुना दीक्षितः।
श्रीजेतावगोत्रभूर्मुनिरयं शान्त्या महाशोभनः
ज्ञानध्यानरतः मदा निजयने शास्त्राणि संलोचयन्॥

(६) पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज—आप निम्बाहेडा (टाक)

व्याख्यानगत यथागुणमतं नामावलीसंगतं
धर्माराधनतत्परं शुभकरं पश्यन्तु भव्याः हृदि ॥१३॥

जैनादिस्तुधरश्चतुर्थमलजिन् वक्ता प्रसिद्धो भुवि
योगेलीनमनो हजारिमलजित् कस्तूरचन्द्रा बुधः।
श्रीमान् मौक्तिकलालजिच्च सुमुनिः प्रावर्तकः शान्तिभाक्
श्रीमान् केशरीमल्लजित्सुखमुनिः श्रीहर्षचन्द्रस्तथा ॥१४॥

विद्यादान रतोहजारिमलजित् प्रावर्तकः पण्डितः
पाण्डित्येनयुत व्रजलालजित् भूमौ युवाचार्यकः
व्यासेवी मुनिनाथुलाल जिदय साहित्यरत्नस्तथा
साहित्यज्ञगणी प्रसन्नहृदयः श्री प्यारचन्द्रो मुनिः ॥१५॥

मायाचन्द्रमुनिः सहस्रमलजित् श्री मेरूलालस्तथा
व्याख्यातामुनिवृद्धिचन्द्रजिदय शोभाछगालालकौ
व्याख्यानेनिपुणौमतौ मुनिवरौ श्रीनाथुरामेन्दुकौ
सर्वोपेन्दुः मुनिः तथा मगनजिन् साहित्यरोद्धाबुधः ॥१६॥

पाण्डित्येन पुनः प्रतापमलजिन् साहित्यप्रेमीमतः
हीरालालबुधे निदेशनपरः चम्पेन्दुकः सम्मतः।
श्रीमान् केवलचन्द्रजिच्चमदनिव्याख्यानदक्षो मतः
व्यासेवी मुनियोगनिष्ठ मधुरः श्रीराजमल्लोऽपरः ॥१७॥

योगी श्री निजयेन्दुकः प्रियंनचः श्रीमोहनः सोहनः
हुक्मीन्दुमुनिसेवकश्चसुमनेः निद्येच्छुका योगिनः
श्रीमज्जवाहरलालशक्मलजिन्कृष्णेन्दुचेतोहराः
श्रीमान् नानरूरामजिच्च सुमुनिः कल्याणमलस्तथा॥१८॥
योगी श्री मुनिनेमिचन्द्रजिदय हीरेन्दुविद्येच्छुकः
सेवी श्री मुनिलाभचन्द्रतपसी श्रीसागरोयंतथा
सेवायां निपुणश्च पूर्णशशिभृद् श्रीदीपचन्द्रोऽपरः
श्री मिश्री पुतनालरामशशिनः श्रीवर्धमानो नगी॥१९॥
श्रीचम्पेन्दुसुरोशनोच सुमुनी विद्येच्छुकाः संमताः
सेवाया निपुणः वसन्त शशभृत् मन्नेन्दुजिच्चापि वै
विद्याया अभिवाच्छको मुनिवरो श्री चन्दनो हर्षणः
भैरुलाल मुनिस्तपस्विसुवरः श्री चादमल्लस्तथा॥२०॥
दर्द लाल मुनिश्च देशनपरः श्री मोतीलालोऽपरः
नित्य स्वात्मरतः तपोऽभिनिरतः श्री रेणुपालोमुनिः
विद्याया अभिवाञ्छकश्च सुमतिः श्री रिन्द्रमल्लोपरः
एवं नूतन दीक्षयान्वनुगतः श्री भागरेन्दुः मतः॥२१॥

चरित्रनायक जैनाचार्य पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज की आज्ञा में विचरने वाले वर्तमान मुनियों की शुभ नामावली—

(१) जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी म०

(२) तपस्वी श्री हजारीमलजी महाराज
(३) पंडित मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज
(४) तपस्वी प्रवर्तक मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
(५) सलाहकारक मुनि श्री केशरीमलजी महाराज
(६) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री सुखलालजी महाराज
(७) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज
(८) प्रवर्तक पंडित मुनि श्री हजारीमलजी महाराज
(९) युवाचार्य पंडित मुनि श्री छगनलालजी महाराज
(१०) व्यावची मुनि श्री नाथूलालजी महाराज
(११) साहित्य-रत्न गणिवर्य प० मुनि श्री प्यारचंदजी महाराज
(१२) तपस्वी मुनि श्री मयाचन्दजी महाराज
(१३) उपाध्याय पंडित मुनि श्री सहसमलजी महाराज
(१४) स्वाध्यायी मुनि श्री भैरूलालजी महाराज
(१५) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री वृद्धिचन्द्रजी महाराज
(१६) व्यावची मुनि श्री शोभालालजी महाराज
(१७) तपस्वी मुनि श्री छब्बालालजी महाराज
(१८) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री नाथूलालजी महाराज
(१९) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री रामलालजी महाराज
(२०) व्यावची मुनि श्री संतोषचन्दजी महाराज
(२१) साहित्यज्ञ पंडित मुनि श्री भगनलालजी म०
(२२) साहित्य प्रेमी पंडित मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज
(२३) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी महाराज

(२४) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री चम्पालालजी महाराज
(२५) साहित्यावलोकी प्रिय व्याख्यानी मुनिश्री केवलचन्दजी म०
(२६) व्यावची मुनि श्री राजमलजी महाराज
(२७) तपस्वी मुनि श्री विजयराजजी महाराज
(२८) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री सोहनलालजी महाराज
(२९) व्याख्यानी श्री सोहनलालजी महाराज
(३०) व्यावची मुनि श्री हुकमीचन्दजी महाराज
(३१) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री जवाहरलालजी महाराज
(३२) " " " इन्द्रमलजी "
(३३) " " " किशनलालजी "
(३४) " " " मनोहरलालजी "
(३५) " " " नानकरामजी "
(३६) " " " कल्याणमलजी "
(३७) तपस्वी मुनि श्री नेमीचन्दजी महाराज
(३८) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री हीरालालजी महाराज
(३९) व्यावची मुनि श्री लाभचन्दजी महाराज
(४०) तपस्वी मुनि श्री सागरमलजी महाराज
(४१) व्यावची मुनि श्री पुनमचन्दजी महाराज
(४२) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री दीपचन्दजी महाराज
(४३) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री मिश्रीलालजी महाराज
(४४) " " " बालचन्दजी "
(४५) " " " रामचन्दजी "

(४६) " " " वर्धमानजी "
(४७) " " " नगीनचन्दजी "
(४८) " " " छोटे चम्पालालजी महाराज
(४९) " " " रोशनलालजी महाराज
(५०) व्याख्यानी मुनि श्री बसतीलालजी महाराज
(५१) व्याख्यानी मुनि श्री मन्नालालजी महाराज
(५२) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री चन्दनमलजी महाराज
(५३) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री हर्षचन्दजी महाराज
(५४) तपस्वी मुनि श्री भेरुलालजी महाराज
(५५) तपस्वी मुनि श्री चांदमलजी महाराज
(५६) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
(५७) व्याख्यानी मुनि श्री बशीलाल जी महाराज
(५८) तपस्वी मुनि श्री रेणुलालजी महाराज
(५९) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री इन्द्रमलजी महाराज
(६०) नवदीक्षित मुनि श्री भँवरलालजी महाराज

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!



उन्नति के कार्यों में आप उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। आप को शास्त्रों का अच्छा बोध है। कई साधु-साध्वियों को आप ने शास्त्राध्ययन करवाया है। मुनिराजों की अनुपस्थिति में आप श्रावकों को शास्त्र सुनाते रहते हैं। आप धर्म के पूर्ण अनुरागी हैं। आपका भक्ति-भाव प्रसशनीय है। आपकी देख-रेख में अनेक धार्मिक संस्थाओं का सचालन हो रहा है।

श्रीमान् दीपचन्दजी सुराना

आप गगधार (झालावाड) के उत्साही नवयुवक हैं। सेवा-भावी और धर्म प्रेमी हैं। आप अनेक वर्षों तक श्री जैनोदय-पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम द्वारा सचालित श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस में मेनेजर के पद पर रह कर अपनी कार्य कुशलता का परिचय दे चुके हैं। सहन शीलता इमानदारी और सत्य निष्ठा आपके जीवन की मुख्य विशेपताएँ हैं। आपको हिन्दी भापा का अच्छा ज्ञान है। आपकी लिपि वडी सुन्दर और सुवाच्य है। आपने इस पुस्तक की हिन्दी भापा के सशोधन में पर्याप्त परिश्रम किया है।

श्रीमान् बाबू निरजनसिंहजी जैन

आप कपड के प्रसिद्ध व्यापारी और "श्री० अमानतरायजी निरजनसिंह" की फर्म के प्रोप्राइटर हैं। आप तीतरवाडा (जिला मुजफ्फर नगर) के निवासी हैं। धर्मप्रेमी और उत्साही नवयुवक हैं। आप योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। पिता पुत्र दोनों के विचार अच्छे हैं। दोनों सेवाभावी और दानी हैं। दोनों का स्वभाव बडा ही सरल और सीधा है। भक्ति भाव प्रसशनीय है।

श्री आचार्य गुण-गायन

[मालावार अङ्गार—कवित्त]

अग्नि अग्ण गढपर, मठाधिश मठ पर,
ज्ञान वान शठ पर, करत प्रबन्ध है।
अर्क तम तर्क पर, घनश्याम नर्क पर,
फर्क पर जैसे मत तर्क चौ चन्द है॥
वाजलथा धृ द पर, राह् जिम चद पर,
पाला अरविन्द पर, पुन्र मकरन्द है।
मोहन महानग्रान, वानन के वृन्द पर,
खून सूनचन्द पर पूज्य सूय चन्द है॥
करत उजाला आला, शशरीश निशहीमे,
पूज्य पा उजाला ज्ञान रचत स्वछन्द को।
तु तो शशी देता सुख निश मे सयोगिन कों,
पूज्य ज्ञान देदे करें मुक्ति आनन्द को॥
तु तो सुख देता है सागर की लहरों को,
करके प्रदान पूज्य सुख यश मकरद को।
पूज्य गुणगाउ, हृदय सिद्धों को मनाउ,
मैं चन्द को सराहू या पूज्य सूयचन्द को॥१॥

—कवि मोहनलाल जैन लोहा मन्डी